अंक १५९ व १६०

जुलाई-दिसंबर २०२२

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

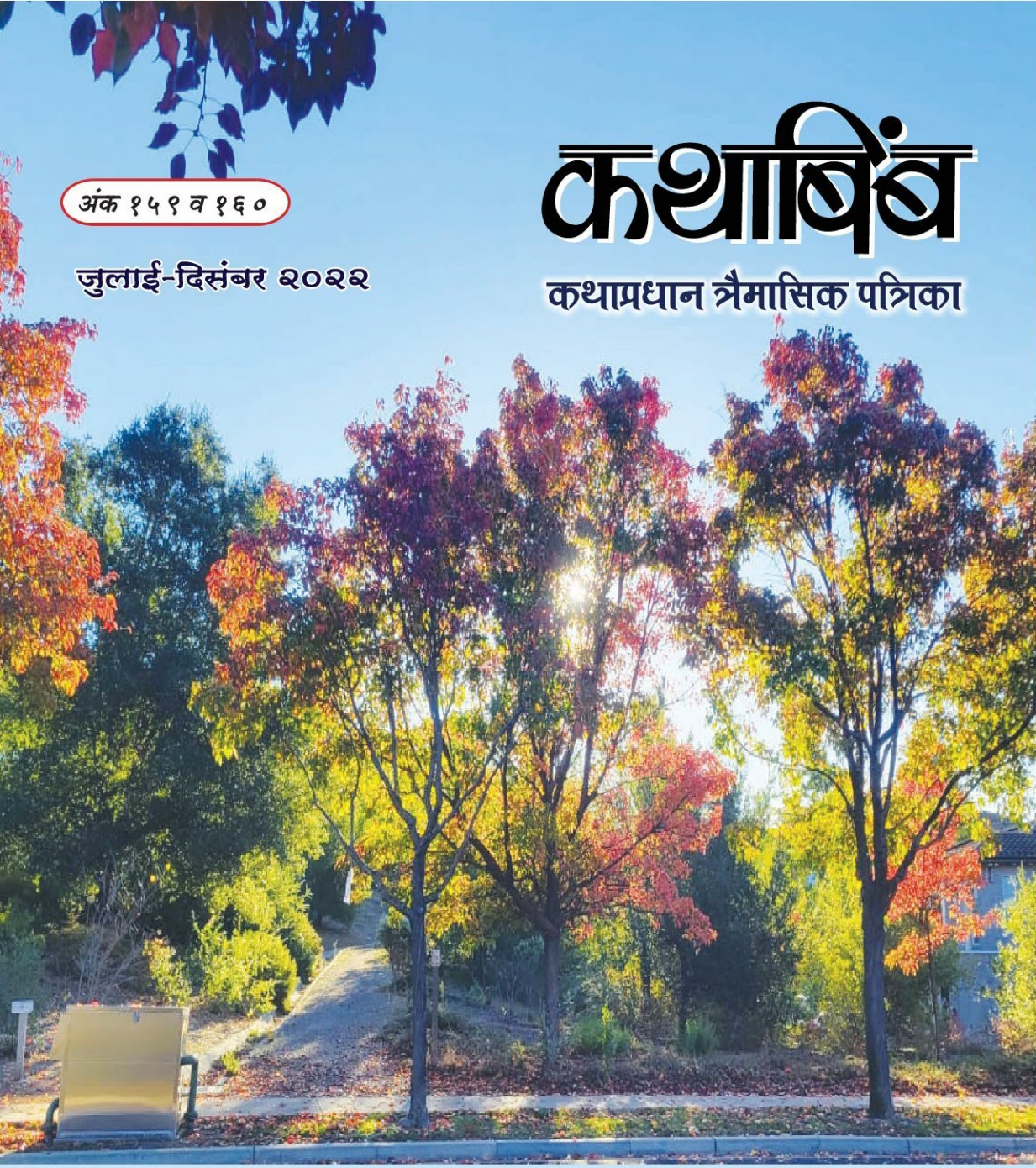

कहानियां

- सुधा ओम ढींगरा
- डॉ. वीणा विज 'उदित'
- आशागंगा प्रमोद शिरढोणकर
- ज्योति जैन
- सुधा जुगरान
- रजनीश राय
- डॉ. अलका अग्रवाल
- अनीता रश्मि
- डॉ. पूरन सिंह
- यशोधरा भटनागर
- जयंत
- रोचिका अरुण शर्मा

आमने-सामने

- डॉ. रीता दास राम
- डॉ. भगवती प्रसाद द्विवेदी

४० रुपये

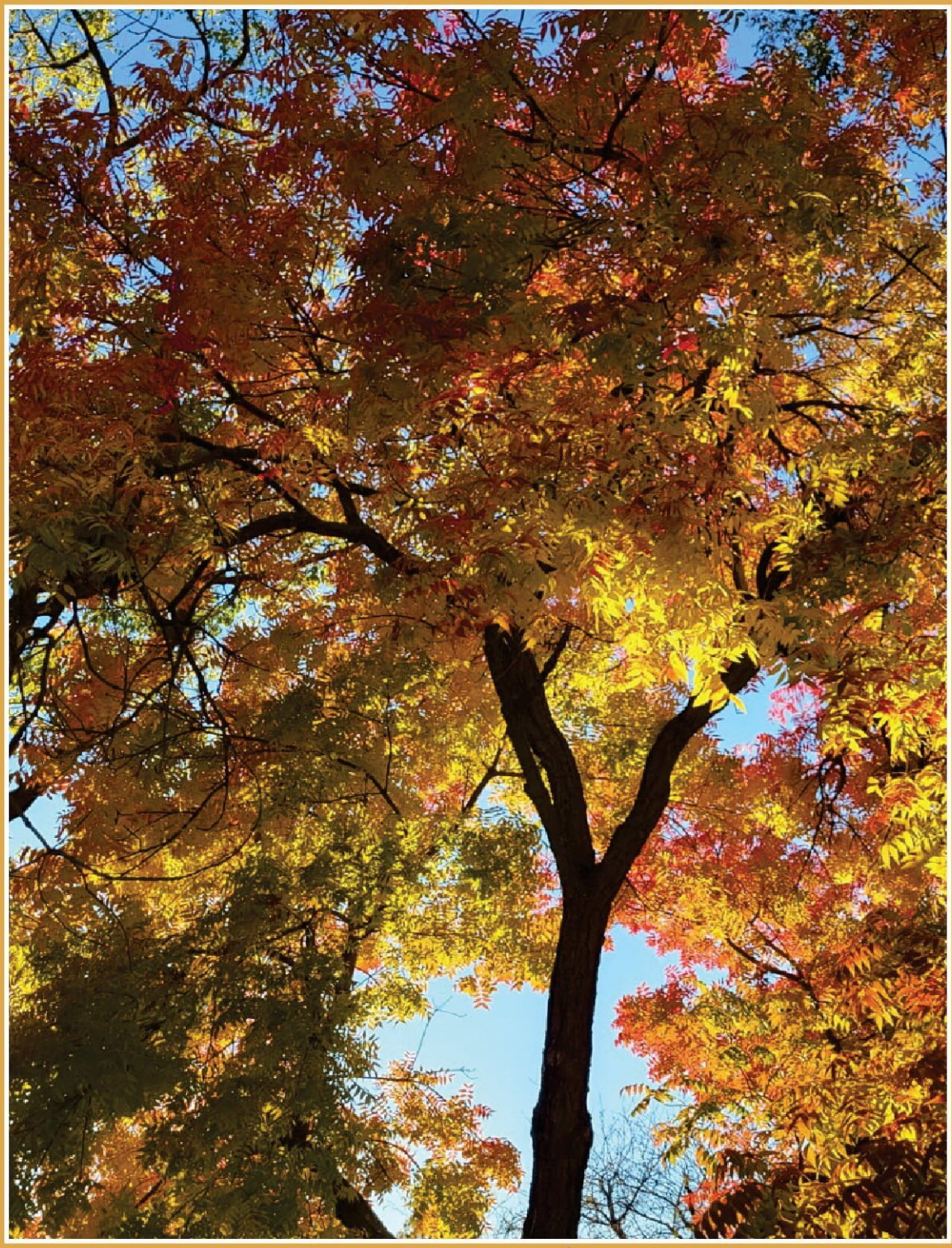

फोटो : तूलिका सक्सेना, कैलिफोर्निया

स्तंभ

।। ३ ।। "कुछ कही, कुछ अनकही"

।। ५ ।। लेटर बॉक्स

।। ६९।। "आमने-सामने" (१) / डॉ. रीता दास राम

।। ७५।। "आमने-सामने" (२) / डॉ. भगवती प्रसाद द्विवेदी

।। ८१।। पुस्तक-समीक्षा

।। ८७।। "वातायन" / शिवनाथ शुक्ल

● **न्यूयॉर्क संपर्क** ●

नरेश मित्तल
(M) 845-367-1044

● **कैलीफ़ोर्निया संपर्क** ●

तूलिका सक्सेना
(M) 224-875-0738

नमित सक्सेना
(M) 347-514-4222

● **"कथाबिंब" अब फ़ेसबुक पर भी** ●

facebook.com/kathabimb

आवरण पर नामित रचनाकारों से निवेदन है कि वे कृपया अपने नाम को "टैग" करें.

एक प्रति का मूल्य : २० रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु
२० रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
(सामान्य अंक : ४४-४८ पृष्ठ)

आवरण चित्र : भारत में कहीं-कहीं पहाड़ों पर भी हमें सर्दियों में वृक्षों पर फूलों जैसी रंग-बिरंगी पत्तियां देखने को मिलती हैं किंतु यह मनोरम दृश्य अक्तूबर-नवंबर के दिनों का अमेरिका के कैलिफ़ोर्निया प्रांत की फ्रेमॉन्ट कॉउन्टी का है. सर्दियों से पहले सारा इलाका रंगों से खिल उठता है.

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

इच्छुक व्यक्ति आजीवन सदस्यता शुल्क (१००० रु.) सीधे बैंक के खाते में भी भेज सकते हैं.

खाते का नाम व संख्या : KATHABIMB, 018011300001164

बैंक का नाम व पता : JANKALYAN SAHAKARI BANK LTD.
: Sindhi Society, Chembur, Mumbai-400071.

आई इफ एस कोड : JSBL0000018

विशिष्ठ सम्मान

वरिष्ठ कथाकार रूपसिंह चंदेल को विश्व संस्कृति और साहित्य में उत्कृष्ट योगदान के लिए मानद वी. एम. तेरोख्रोव स्मृति सम्मान-२०२२ (निज़नी नोवगोरोद, रूस) दिये जाने की घोषणा की गयी है.

यह सम्मान उन्हें लियो तोल्सतोय के अंतिम उपन्यास हाज्जी मुराद, तोल्सतोय पर ३० संस्मरणों के अनुवाद (लियो तोल्सतोय का अंतरंग संसार), और तोल्सतोय की जीवनी के अनुवाद के साथ दॉस्तोएव्स्की की मौलिक जीवनी दॉस्तोएव्स्की के प्रेम के लिए दिया गया है.

(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

जुलाई-दिसंबर २०२२
१५९ व १६०
संयुक्तांक

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"

संपादिका
मंजुश्री

संपादन सहयोग
डॉ. राजम पिल्लै
जय प्रकाश त्रिपाठी
अशोक वशिष्ठ
अश्विनी कुमार मिश्र

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●
आजीवन : १००० रु., **त्रैवार्षिक** : २०० रु.,
वार्षिक : ७५ रु.,

कृपया सदस्यता शुल्क
मनीऑर्डर, चैक द्वारा
केवल **"कथाबिंब"** के नाम ही भेजें.

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता●
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-४०० ०८८.
मो. : ९८१९१६२६४८, ९८१९१६२९४९

e-mail : kathabimb@gmail.com
www.kathabimb.com

कहानियां

।। ७ ।। कभी देर नहीं होती... – डॉ. सुधा ओम ढींगरा
।। १३।। मूक क्रंदन – डॉ. वीणा विज "उदित"
।। २१।। उस सुबह की चाय – आशागंगा प्रमोद शिरढोणकर
।। २५।। ना-मुराद – ज्योति जैन
।। ३०।। पेंडुलम – सुधा जुगरान
।। ३५।। एक नया संबंध – रजनीश राय
।। ४१।। ख़ुशियों की चाबी – अल्का अग्रवाल
।। ४६।। कोलतार की तपती सड़क पर – अनीता रश्मि
।। ५२।। हरे कांच की चूड़ियां– डॉ. पूरन सिंह
।। ५६।। नींव – यशोधरा भटनागर
।। ५९।। दरारें– जयंत
।। ६३।। पूर्वाग्रह – रोचिका अरुण शर्मा

लघुकथाएं

।। १८।। सवाल / वीरेंद्र बहादुर सिंह
।। २८।। प्यास / कृष्ण चंद्र महादेविया
।। ५०।। आज़ादी / कृष्णा अग्निहोत्री
।। ५४।। सड़क / चंद्र प्रकाश श्रीवास्तव
।। ५८।। टिंच्चू एंड कंपनी / कृष्णा अग्निहोत्री
।। ६८।। मन का सौंदर्य / पूजा गुप्ता
।। ८६।। उसका संघर्ष / सविता दास

गीत / कविताएं

।। ५४।। गीत : शब्द / कल्याणमय आनंद
।। ६१।। कविता / सत्येंद्र सिंह
।। ६७।। कविताएं : एक पिता, मैं / राजेश पाठक
।। ८४।। जीवन के धोबी पटरे पर / डॉ. फूलचंद मानव

कुछ कही, कुछ अनकही

यह वर्ष २०२२ का दूसरा संयुक्तांक (अंक १५९ व १६०) है, इसके साथ ही कथाबिंब ने अपने प्रकाशन के ४४ वर्ष पूरे किये हैं. पत्रिका के पहले दो अंक "सृजन" शीर्षक से प्रकाशित हुए थे. रज़िस्ट्रीकरण करने पर ज्ञात हुआ कि सृजन नाम पहले से पंजीकृत है. इसके पश्चात "कथाबिंब" नाम स्वीकृत हुआ. उस दौर में हिंदी की कई बड़ी पत्रिकाएं बंद हुई थीं. बिना पर्याप्त साधनों के एक लघु-पत्रिका के रूप में "कथाबिंब" का प्रकाशन शुरू किया. एक अन्य पत्रिका "वैज्ञानिक" के प्रकाशन-संपादन का दस साल का अनुभव ही मेरी जमापूंजी थी. प्रारंभ से अनेक लेखकों ने सहयोग का हाथ आगे बढ़ाया. यहां तक कि कुछ अंक द्वैमासिक निकले. थोड़े समय में ही एक कविता और दूसरा लघुकथा विशेषांक निकला. दोनों विशेषांकों को लेखक-वृंद से अत्यंत सराहना मिली. दोनों विशेषांक पुस्तकाकार में भी छपे. गाहेबगाहे आज भी इन विशेषांकों की चर्चा होती है. लोग जुड़ते गये और कारवां चल निकला. बीच में अनेक गतिरोध आये. एक समय पत्रिका बंद होने के कगार पर थी. किंतु ग़ज़लकार मित्र हस्तीमल "हस्ती" जिनका नाम "कथाबिंब" में सहयोगी संपादक के रूप में जाता था, ने कहा कि कुछ भी हो जाये पत्रिका बंद नहीं होनी चाहिए. तदंतर कई बार कहानी-विशेषांक निकाले. आज स्थिति यह है कि "कथाबिंब" एक अंतर्राष्ट्रीय कहानी पत्रिका के रूप में जानी जाती है. किंतु शारीरिक व्याधियों के चलते मेरे लिए अब पत्रिका निकालते रहना मुश्किल होता जा रहा है. हमारी परम इच्छा है कि कोई व्यक्ति या संस्था "कथाबिंब" को आगे चलाये. यदि कोई प्रस्ताव आता है तो भविष्य में जितना संभव होगा मैं सहयोग करता रहूंगा. परिस्थितिवश, इस कारण फिलहाल "कथाबिंब" का प्रकाशन इस संयुक्तांक के पश्चात स्थगित रहेगा.

वर्ष का यह दूसरा संयुक्तांक है. संयुक्तांक को पाठक "कथाबिंब" की वेबसाइट पर जनवरी २३ के पहले सप्ताह तक पढ़ सकेंगे. आशा है कि जल्दी ही प्रिंट वर्ज़न भी पाठकों को उपलब्ध होगा. हम उन सभी रचनाकारों के आभारी हैं जो हमें लगातार सामग्री भेजते रहे हैं.

"कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार-२०२२" के लिए मत-पत्र पृष्ठ ८८ पर प्रकाशित किया गया है, जिसमें दोनों संयुक्तांकों में प्रकाशित सभी कहानियों के शीर्षक, कथाकारों के नामों सहित दिये गये हैं पाठकों से निवेदन है कि शीघ्र अपनी पसंद का क्रम हमें बतायें. सभी पुरस्कार विजेताओं की घोषणा "कथाबिंब" की वेबसाइट पर की जायेगी तथा अलग से पत्र द्वारा भी विजेताओं को सूचना भेजी जायेगी.

●

अब इस सयुक्तांक की कहानियों के बारे में कुछ छुटपुट. संयुक्तांक की पहली कहानी की लेखिका सुधा जी उपन्यासकार, कहानीकार व कवि हैं. साथ ही ढींगरा फैमिली फाउंडेशन की सचिव भी हैं. प्रस्तुत कहानी *"कभी देर नहीं होती..."* पारिवारिक संबंधों में न चाहने पर भी पीढ़ियों में कभी-कभी अंतर पैदा हो जाते हैं. लेकिन साथ खेले हुए, बड़े होते बच्चों के मध्य किसी एक की पहल पर अंतरों को ख़त्म होना ही होता है. अगली कहानी *"मूक क्रंदन"* वरिष्ठ लेखिका डॉ. वीणा विज "उदित" की है. कहानी किसी संगीत घराने की याद दिलाती है. नियमित रियाज़ के मध्य प्रेम भावनाएं छिप नहीं पातीं. किसी न किसी तरह से मूक क्रंदन के रूप में बाहर आ ही जाती हैं. आशा प्रमोद शिरढोणकर की कहानी *"उस सुबह की चाय"* हर उस घर की कहानी है जहां पति-पत्नी दोनों नौकरी पेशा हों. पत्नी को दौड़ते-भागते, घर-बाहर दोनों का सारा काम देखना पड़ता है. पत्नी को लगता है कि पति पत्नी की परेशानी नहीं समझता. किंतु दरअसल ऐसा नहीं है. अगली कहानी *"ना-मुराद"* (ज्योति जैन) एकदम अलग तेवर की कहानी है. हमारे समाज में यदि कोई बच्चा समलैंगिक पैदा हो तो उसके लिए जीवन-यापन करना बहुत कठिन हो जाता है. ऐसे में समाज उसका पूरी तरह बहिष्कार कर देता है. लेकिन राधा और सुकेश अलग मिट्टी के बने थे. वे अपने लड़के सुशांत के साथ जब किसी पर्यटक स्थल गये हुए थे तो देखा कि एक परिवार ऐसे ही एक बच्चे को तिरस्कृत कर रहा था और उसे नामुराद पुकार रहा था. सुकेश लड़के को अपने घर ले आये और उसका नाम नामुराद से मुराद रख दिया. मुराद की पढ़ाई किसी स्कूल में नहीं हो सकती थी तो उसे शिक्षक घर पर पढ़ाते थे. आगे चलकर इसी नामुराद ने परिवार का पार लगाया. पांचवी कहानी "पेंडुलम" (सुधा जुगरान) में भी समस्या वही है. संपन्न परिवार में पिता के न रहने पर मां दो बेटों के होने पर भी कहां रहे यह समस्या बनी रहती है. बेटों के अपने परिवार हैं. मां पेंडुलम बन कर रह जाती है. अंतत: मां की बहन का सुझाव ही कारगर होता है और जमी हुई बर्फ पिघलने लगती है. रजनीश राय (*"एक नया संबंध"*) कथाबिंब के पाठकों के लिए नया नाम है. बरसों बाद कथा नायक अपने शहर लौट कर आता है. कस्बा अब पूरी तरह बदल गया है. नयी-नयी बिल्डिंगें बन गयी हैं, माल्स बन गये हैं. वह पूरन मोची से मिलना चाहता है, उसका वह शुक्रगुजार है. मुफलिसी में कितनी बार बिना पैसे लिये पूरन काम कर दिया करता है. वह पूरन से मिलना चाहता है लेकिन कस्बा अब पूरी तरह शहर हो गया है. फिर भी किसी तरह पूरन का पता लगा लेता है. पूरन बहुत बीमार है. पहले तो एक बड़े अस्पताल में उसका इलाज कराता है. फिर वह उसे अपने साथ विदेश ले जाता है. कहीं अधिक पूरन का पिछला उधार चुकता कर देता है. अगली कहानी *"ख़ुशियों की चाबी"* (अल्का अग्रवाल) में कॉलेज जाते समय रिया के हाथ में कमरे की चाबी थी. लौटने पर पर्स में चाबी नहीं मिली. अब कमरा कैसे खोले? दिल्ली ऐसे बड़े शहर में वह नयी-नयी आयी थी. कुछ लड़कियों के साथ शेयरिंग में रह रही थी. चाबी खो गयी है यह जानकर सब उसे लापरवाह कहेंगे. नया ताला लगवाना भी खर्चीला होगा. रात भर वह परेशान रही. दूसरे दिन इत्तफाक से वही रिक्शा वाला मिल गया, उसने पूछा कि उसकी चाबी तो नहीं खो गयी है? रिया को लगा कि उसकी ख़ुशियां लौट आयी हैं. आठवीं कहानी *"कोलतार की तपती सड़क पर"* की लेखिका अनीता रश्मि "कथाबिंब" की नियमित लेखिका हैं. गांव की सड़क बनाने वाले मजदूरों के बीच ऐन दोपहर एक कार आकर रुकती है. मालूम पड़ता है कि गाड़ी बंद पड़ गयी है और काफी दूरी से मैकेनिक बुलाना पड़ेगा. कार में एक

महिला है और बच्चे हैं. मजदूरों की मदद से धक्का लगाकर कार को सड़क किनारे ले जाया जाता है. गरमी में कोलतार की सड़क तप रही है. मजदूरनियां खाने के लिए कुछ जंगली फल देती हैं. जब तक मैकेनिक आता है एयरकंडीशन्ड कार में बैठे लोग हंसते-खेलते गाना गाते मजदूरों को आश्चर्य से देखते रहते हैं. अगली कहानी *"हरे कांच की चूड़ियां"* (डॉ. पूरन सिंह) के एकांश और शुभांगी एक दूसरे को बहुत चाहते थे. शुरू में छोटे से मकान में रहते थे. दो बच्चे हुए, दोनों मेहनती निकले और बड़ी कंपनियों में काम करने लगे. मकान भी सारी सुविधाओं वाला चार कमरों का सुंदर-सा बनवा लिया. मगर पिछले कुछ सालों से उनके प्यार में ग्रहण लग गया. एक दिन शुभांगी ने एकांश को किसी महिला से फोन पर बात करते क्या सुना कि आपस में बात करना बंद कर दिया. मोबाइल में लड़की की फोटो भी दिखी. शुभांगी ने एकांश के सब काम करना बंद कर दिये. आपसी तनाव के कारण एक दिन एकांश ऑफिस में बेहोश हो गया. मित्र उसे अस्पताल ले गये. वह ठीक हो गया. शुभांगी ने एकांश के सारे काम बंद कर दिये थे. अपने काम करने के लिए उसने एक कामवाली को रख लिया. वह भी अकेली थी, वह एकांश को खाना खिलाने, दवा देने तक का सारा काम करती थी. अचानक एक दिन समय पर दवाई न मिलने पर एकांश की मृत्यु हो जाती है. लोगों ने देखा कि कामवाली अपनी चूड़ियां तोड़ रही है. संयुक्तांक की दसवीं कहानी *"नींव"* (यशोधरा भटनागर) का कथ्य एकदम सामान्य है. सरो का लड़का बरसों से विदेश में रहता आया है. लेकिन तनु ने खबर की है कि वह आ रहा है. तबसे वह बहुत प्रसन्न है. वह आस-पड़ोस में सबको बता आयी कि उसका लड़का और बहू अगले महीने आ रहे है. कोई विश्वास नहीं करता, हर एक कहता कि कोई न कोई मतलब होगा! हो सकता है कि प्रापर्टी बेचने के लिए आ रहे हैं. लेकिन आने पर बच्चों ने कहा कि वे विदेश में अपने मां-बाप को मिस करते हैं, अब सब एक साथ रहें इसलिए वे दोनों को लेने आये हैं. यह मकान तो ऐसे ही रहना चाहिए, यह हम सबके जीवन का एक दस्तावेज है. जब-जब ऊर्जा की ज़रूरत होगी हम आ जाया करेंगे. यहां आकर हमें प्राणवायु मिलती है. घर की देखभाल के लिए तो रामू काका हैं ही.

जयंत की *"दरारें"* भी एक छोटे परिवार की कहानी है. राघवेंद्र ने बड़े लड़के राजकुमार के लिए लड़की बहुत देख कर चुनी थी और विवाह भी काफी धूमधाम से किया. लड़का और बहू दिल्ली में बड़ी कंपनियों में काम करते हैं. दूसरे लड़के का नाम पत्नी ने प्रिंस रखा था. तभी से राघवेंद्र नाराज थे. प्रिंस ने बड़े भाई से पहले ही कोर्ट में अपनी पसंद की दूसरी जाति की लड़की से शादी कर ली. बहू को लड़का जब घर लेकर आया और पैर छूने लगा तो उन्होंने मुंह फेर लिया. थोड़े दिनों बाद बड़े भाई को विदेश जाना था वह चला गया. इधर राघवेंद्र की पत्नी भी परलोक सिधार गयीं. वे अभी बिस्तर पर पड़े हैं कूल्हे की हड्डी में दरारें पड़ गयी हैं, दवाइयां और इंजेक्शन जारी हैं. तबियत में सुधार होने पर छोटा लड़का उन्हें घर ले आया. बहू नयन को दिन में घर पर देख कर उसने पूछा कि क्या उसने नौकरी छोड़ दी है. नयन ने बताया कि राघवेंद्र की सेवा ठीक से हो सके इसलिए उसने कुछ दिनों के लिए छुट्टी ले ली है. संयुक्तांक की अंतिम कहानी *"पूर्वाग्रह"* रोचिका अरुण शर्मा की "कथाबिंब" में पहली कहानी है. दो सहेलियां राखी और स्नेहा २३ साल बादमिलती हैं. स्नेहा दुबई में रहती है. इतने सालों के बाद मिलने पर वे अपना पिछला और वर्तमान साझा करती हैं. स्नेहा ने बहुत अच्छी आवभगत की. दोनों के मन में जो भी पूर्वाग्रह थे सब मिट गये.

●

ऐसा लगता है कि पूरा विश्व एक बड़े विकट संकट से गुजर रहा है. कोई भी ऐसा स्थल या देश नहीं है जो निरापद है. २०१९ से हम कोरोना महामारी को झेल रहे हैं, कुछ दिन पूर्व लगने लगा था कि महामारी के दिन पूरे हो गये हैं. लोगों को लगा था कि इस वायरस का जन्म चीन के वुहान इलाके में जैविक युद्ध की दिशा में निर्मित किया गया है, लेकिन टीकाकरण से काफी देशों ने एक सीमा तक इसे नियंत्रित कर लिया है. सबसे अभूतपूर्व उदाहरण हमारे अपने देश का है. आप बिना किसी रोकटोक के कहीं भी जा सकते हैं. प्रधानमंत्री की देखरेख में पूरा अभियान चलाया गया. आज देश में चार-चार वैक्सीन उपलब्ध हैं. जिन्हें देश के वैज्ञानिकों ने ही बनाया है. अगर बूस्टर डोज की भी गिनती की जाये तो २०० करोड़ लोगों से अधिक का टीकाकरण हो चुका है. तमाम ऐहतिहातों के बावजूद जापान और चीन आज भी प्रभावित हैं. चीन के हाल सबसे बुरे हैं. दूसरों के लिए गड्ढा खोदने वाले समझ नहीं पा रहे हैं कि कैसे स्थिति को नियंत्रित किया जाये. लाशों को रखने की जगह कम पड़ रही है. रूस और यूक्रेन की लड़ाई को १० महीनों से अधिक हो गये हैं.

संयुक्त राष्ट्र संघ और नैटो निरर्थक हो गये हैं. युद्ध के जारी रहते हुए कितने मिसाइल और बम आकाश में छोड़े जाते हैं, जान-माल का नुकसान तो होता ही साथ में अग्नि और धुएं से पर्यावरण प्रदूषण में अतिशय वृद्धि हो रही है. ऐसे में ग्लोबल वार्निंग की बात करना पूरी तरह बेमानी है. ऐसे क्षेत्रों में जहां कभी वर्षा नहीं होती थी, अतिवृष्टी हो रही है. सारे विश्व का मौसम प्रभावित हो रहा है. अनेक छोटे बड़े देश एक दूसरे को रोज़ धमकी देते हैं. इस दिशा में कोई सार्थक और कारगर उपाय सामने नहीं आ रहे हैं.

अपने देश में जाड़ा, गर्मी और बरसात के अलावा त्यौहारों का और चुनावों का मौसम लगातार चलते रहते हैं. गुजरात हो, हिमाचल प्रदेश हो हर कहीं एक-एक दिनों में कई-कई रैलियां. बाजारों में भीड़-भड़क्का. कोरोना से लगता है हम भयमुक्त हो गये हैं. इतनी असावधानी ठीक नहीं है. विकास के अनेक कार्य सामने आ रहे हैं. अधिक लेनों वाली हाई-वे बन रही हैं. नये-नये भवनों, अट्टालिकाओं का निर्माण तेज़ी से हो रहा है. समाचार-पत्र सर्व सुविधाओं युक्त कॉम्प्लेक्सों के विज्ञापनों से भरे रहते हैं. अधिकांश लोगों के पास निजी वाहन हैं. लोगों की क्रय क्षमता बढ़ गयी है. किसानों की आत्महत्याओं की खबरें अब नहीं आतीं, लेकिन सड़क दुर्घटनाएं बढ़ती जा रही हैं. शीघ्रता से इसका हमें संज्ञान लेना होगा. इसका मुख्य कारण अधिकतर बिना समुचित प्रशिक्षण के वाहन चालक गाड़ी चलाने लगते हैं. विदेशों में ड्राइवर को दो टेस्ट पास करने होते हैं, एक लिखित और दूसरा रोड टेस्ट जो कि काफी मुश्किल होता है. मुख्य नियम है "राइट ऑफ वे," यानी कि पहले सड़क क्रॉस करने का किसका अधिकार? चौराहे पर चारों सड़कों पर जो पहले आया वह पहले जायेगा. अन्य नियमों का भी हमें सख़्ती से पालन करना पड़ेगा.

अरविंद

लेटर-बॉक्स

एक लंबे अंतराल के बाद संयुक्तांक जनवरी-जून २०२२ डाक से प्राप्त करके अच्छा लगा. लेखक और संपादक के बीच पत्रिका एक सेतु है. पाठकों तक लेखकों को संपादक पहुंचा रहे हैं लेकिन आज लेखन में जो सामने आ रहा है वह बहुत अधिक संतुष्ट नहीं कर रहा. या तो लेखकों ने पढ़ना बंद कर दिया है या फिर संपादक के पास रचना को वाचने, जांचने के लिए समय कम है. तब भी 'कथाबिंब' की कहानियां, लघु-कथाएं, कविताएं, ग़ज़लें इसलिए संतुष्ट कर रही हैं कि लेखकों के नाम भले मेरे लिए नए हों उनकी रचनाओं में दमखम है और हर पत्रिका और उसके पाठक की ज़रूरत भी यही है.

आपके स्तंभ वातायन, सागर-सीपी, आमने-सामने, कही-अनकही, रोचक और पठनीय हैं. पुस्तक समीक्षा के नाम पर किताब की बात कम, रचनाकार की बात ज़्यादा उठायी जाती है. आवरण पृष्ठ चित्ताकर्षक लगा, इसके लिए आपको और मंजुश्री को बधाई. रमेश बतरा मेरे परिचित और यहीं चंडीगढ़ से बंबई जाने वाले लोगों में से एक थे. 'कत्ल की रात' पर किताब की समीक्षा पढ़ गया हूं. सार्थक है. रूपसिंह चंदेल ने अरविंद की चुनिंदा कहानियां चर्चा में रखकर एक जानकारी दी है. शुभकामनाएं.

- प्रो. फूलचंद मानव
अध्यक्ष, साहित्य संगम, ट्राईसिटी, २३९, दशमेश एनक्लेव,
जीरकपुर, ढकौली-१६०१०४ (जि. मोहाली)
मो. : ९६४६८७९८९०, ९३१६००१५४९

जनवरी जून -२२ अंक प्राप्त हुआ. आवरण के अति सुंदर रोमांटिक रंग और चित्र ने तुरंत ही मन मोह लिया. एक से बढ़ कर एक कहानी तथा अन्य सामग्री अत्यंत पठनीय रहे. सागर-सीपी में श्री सदाशिव कौतुकजी के बारे में कई दिलचस्प जानकारियां मिलीं.

'वातायन' के अंतर्गत प्रस्तुत जानकारी ने चकित किया कि बड़े प्रकाशक भी ज़रूरी नहीं कि दूध के धुले हों. 'कथाबिंब' की सबसे बड़ी एवं महत्त विशेषता है पत्रिका का कोई कोना, कोई पृष्ठ ऐसा नहीं कि जिसे दरकिनार किया जा सके. इतनी उत्तम पत्रिका इतनी कम क़ीमत पर उपलब्ध कराना भी सरल कार्य नहीं है.

- डॉ. मंगला रामचंद्रन,
६०८ आई ब्लॉक, मेरीगोल्ड, ओसियन पार्क,
निपानिया, इंदौर ४५२०१०.
मो, ९७५३३५१५०६

तबीयत ठीक न होने के कारण पढ़ने-लिखने के प्रति एक लंबी उक्ताहट पर कुछ नियंत्रण पाने के लिए अधूरा पढ़ा हुआ 'कथाबिंब' अंक १५७ व १५८ पुनः उठा लिया. नतीज़ा आपके सामने है. आदतन क़लम पकड़ कर एक-एक शब्द पढ़ती हूं और पृष्ठ-दर-पृष्ठ टिप्पणी लिखती हूं. बहुत ही बढ़िया, सार्थक व सामयिक अंक; हर दृष्टि से! इस बार तो सभी लघु–कथाएं भी अपनी जीवंतता का एहसास दिला गयीं. स्तंभों की भी संख्या बढ़ गयी. 'वातायन' मत रोकिएगा. कच्चे चिट्ठों को हवा लगने दें. पुस्तक समीक्षा में रूपसिंह चंदेल की 'एक टुकड़ा ज़िंदगी' हर वर्ग और श्रेणी की आपाधापी से मुखातिब कराती हुई! रमेश बत्तरा की 'कत्ल की रात' और अंत में 'अरविंद की चुनिंदा कहानियां.' सभी 'कुछ कही, कुछ अनकही' की तर्ज पर आइना दिखाती हुई. कहानियों की बात करें तो अरविंद जी द्वारा सबका सार बता देने के बाद भी पाठक की अपनी सोच, समझ और भावात्मकता अभूतपूर्व आनंद व संतुष्टि प्रदान करती है. इंसानी फितरत, उसकी सामाजिक और मनोवैज्ञानिक संस्कृति व विकृति; कहानियों के पात्रों और परिस्थितियों का हिस्सा बनती चली जाती है. सीमा असीम सक्सेना कामकाजी महिलाओं की मतलब परस्ती की तरफ़ इशारा करती हैं और डॉ. सी. भास्कर राव विकट पारिवारिक हालातों में घर के

बड़े-बुज़ुर्गों की मौजूदगी शीतल छाया-सी मानते हैं. प्रगति गुप्ता की नायिका के हर निर्णय में मजी हुई सकारात्मकता है, उद्यम है, ओज है जिसकी स्पैस्टिक बेटी बरकत बन कर आयी थी--- बरस कर चली गयी थी. डॉ. रंजना जायसवाल की नेहा बंधी है अपने परिवार की ज़रूरतों से. वह सबल है पर इतनी मज़बूत भी नहीं कि अपनी दीदी की मृत्यु के बाद उसके दो बच्चों के पिता यानि अपने समृद्ध जीजा से शादी कर ले क्योंकि उसकी मां ऐसा चाहती है. वह खड़ी रहेगी हमेशा इन बच्चों के साथ मौसी की तरह! सदाशिव कौतुक का चेतक और पिट्टू रुला जाता है. अखिलेश श्रीवास्तव 'चमन' ने नन्हे बच्चों की शिक्षा और शिक्षा के दौरान हाथ से फिसलते बचपने के खिलाफ़ अंगुली उठायी है. प्रेम गुप्ता 'मानी' का नायक पंडित काकू अक्खड़ है, निर्धन है. ऐंठ इतनी कि अपनी पत्नी की दूरदर्शिता और समझ को कभी आंक नहीं पाया. वरना वह अकेले ना जूझता. रश्मि धवन की नीरा समर्पण वाली गुड़िया नहीं बल्कि घर-परिवार और अपनी गृहस्थी की संरक्षिका है.

अब बात मेरी पसंदीदा कहानियों की. विजय सिंह चौहान की 'मन की ज़मीन', डॉ. जयवंत डिमरी की 'मैं आगे बढ़ गयी हूं' और डॉ. निधि अग्रवाल की 'परदा री-लोडेड'. बात वही, पर नज़रिए कई. भावों और संवेदनाओं में लिपटी हर कोण की अपनी स्वतंत्र परिभाषा! उद्देश्य है नवकिरण के साथ नया सवेरा! 'आई हैव मूव्ड ऑन!' कितना सार्थक है हमारी ज़िंदगी से घुला-मिला यह दंभपूर्ण वाक्य! और हां अपनी और अपने पड़ोस की मिनी के आत्मविश्वास को अपने स्नेह और सूझबूझ की 'डोज़' ज़रूर देते रहिएगा. समय-समय पर. संजय कुमार सिंह की 'गांधी का स्वप्न भंग' इस विषय वस्तु पर गत कई दशकों से अनेकों एकांकी लिखे और खेले जा चुके हैं. यहां मैं दाद देना चाहूंगी प्रधान संपादक 'अरविंद' जी की पैनी नज़र की! वे कभी दूरबीन लगाकर 'विधा' का जायज़ा नहीं लेते. बस, पा जाते हैं कथा के अनमोल बिंब. शैली कोई हो! अंदाज़ जैसा हो!

कविता और ग़ज़लें एक से एक बेहतर. हां, गीत की भाषा ज़रूर क्लिष्ट लगी.

बहुत ही सहज व नेक पहल 'प्राप्ति स्वीकार'. हमारा साधुवाद, हमारे अपने समग्र संपादन मंडल को जिन्होंने अरविंद राही के आलस्य को झटक दिया. डॉ. प्रतापसिंह सोढ़ी के जरिए सदाशिव कौतुक से मिलवा दिया. सिंधु ताई सपकाल के जीवन से कमज़ोरी को भी ताकत बनाने का मंत्र दिया.

बाकी मेरी भूल-चूक माफ़.

और हां, रूमानी 'मुखपृष्ठ' ! बिगुल वृक्ष!! कैसे भूल सकते हैं आमची मुंबई!!!

- सविता मनचंदा
पी-२/८३, ज़रीना पार्क,
अणुशक्तिनगर गेट के सामने, मानखुर्द,
मुंबई- ४०००८८.
मो. ९९६९४८३०२५

'कथाबिंब' के प्रति कैसे आभार प्रकट करूं, समझ में नहीं आता. सच कहा जाए तो आपकी 'कथाबिंब' ने ही मेरी कहानियां पढ़ने की अभिरुचि को बनाए रखा है नहीं तो आज कहानियों की गिनी-चुनी पत्रिकाओं में वह बात कहां जो 'कथाबिंब' में है. इस संयुक्तांक की कई कहानियों ने तो मुझे झकझोर कर रख दिया है. 'नहीं मुझे शहर नहीं जाना है' कहानी में तो विश्व साहित्य के उत्स रूपायित होते हैं. आज के इस पूर्ण भौतिकवादी समय में इतनी स्तरीय पत्रिका निकालना कोई मामूली बात नहीं है. ऐसे संयोजन के लिए उदात्त कर्मठता परमावश्यक है जिसकी मात्र कल्पना ही की जा सकती है. 'कथाबिंब' का ऐसे कठिन समय में भी सीना ताने खड़े रहना मुझे तो आपकी तपस्या ही प्रतीत होती है. खैर, व्यर्थ नहीं जाएगी आपकी यह कठिन साधना, इससे जुड़े साहित्यिक अभिरुचि संपन्न लोग आपकी श्रमशीलता को भलीभांति समझते हैं.

'कथाबिंब' निश्चित ही एक संपूर्ण साहित्यिक पत्रिका है जिसकी स्तरीयता बेमिसाल है और इसका श्रेय आप दोनों को ही जाता है. वैसे तो 'कथाबिंब' के सारे स्थायी स्तंभ बहुत अच्छे हैं परंतु उनमें मुझे 'आमने-सामने' कुछ ज़्यादा ही

(शेष भाग पृष्ठ २० पर देखें...)

कभी देर नहीं होती...

सुधा ओम ढींगरा

उपन्यासकार, कहानीकार,
कवि और पत्रकार

प्रकाशित कृतियां : दो उपन्यास, सात कहानी संग्रह, तीन कविता संग्रह, एक निबंध संग्रह, ग्यारह संपादित पुस्तकें. १०० पुस्तकों में साहित्यिक सहयोग. भारत और विदेशों की तकरीबन १००० पत्र-पत्रिकाओं में कहानियां, कविताएं और आलेख प्रकाशित. साहित्य पर छह आलोचना ग्रंथ, छह शोध ग्रंथ प्रकाशित.

सम्मान एवं पुरस्कार : केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा द्वारा २०१४ का पद्मभूषण डॉ.मोटूरि सत्यनारायण पुरस्कार माननीय राष्ट्रपति द्वारा. उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ द्वारा २०१३ का 'हिंदी विदेश प्रसार सम्मान'. स्पंदन संस्था, भोपाल की ओर से २०१३ का स्पंदन प्रवासी कथा सम्मान, अन्य अनेकों पुरस्कार.

संप्रति : प्रमुख संपादक-'विभोम-स्वर' त्रैमासिक पत्रिका, संरक्षक एवं सलाहकार संपादक : 'शिवना साहित्यिकी'. ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउंडेशन की उपाध्यक्ष और सचिव.

"टेक लेफ़्ट..." वह लेफ़्ट लेकर कार को दूर तक लेकर गया.

"नाओ टेक राइट ऑन स्टॉप साइन..." उसने स्टॉप साइन पर राइट लिया और ड्राइव करता हुआ वहीं आ गया, जहां से चला था. दिशा निर्धारित यंत्र के निर्देशों का वह पिछले आधे घंटे से पालन कर कार चला रहा है और सब-डिवीज़न (शहर के एक एरिया में बसे घरों का समूह) का चक्कर लगा कर भी निर्धारित घर तक पहुंच नहीं पाया है. हां सब-डिवीज़न की परिक्रमा ज़रूर कर ली है उसने.

"अरे यार तुम मुझे कितना घुमाएगा, मंज़िल तक पहुंचाएगा या नहीं." वह नैविगेटर को देखते हुए चिढ़ कर बोला.

दिशा बताने वाले यंत्र के निर्देशों पर वह उस सब-डिवीज़न में पहुंच तो गया, जहां पर वह घर है; जिसका पता उसे दिया गया था और जिस घर में उसे जाना है. पिछले दस मिनट से नैविगेटर उसे कभी दाएं, कभी बाएं घुमा रहा है, पर किसी घर के आगे रुकने को नहीं कह रहा. एरिया बिलकुल नया है, काफ़ी घर बन चुके हैं, कुछ घर अभी बन रहे हैं, शायद इसलिए गूगल मैप में न होने के कारण नैविगेटर दिशा निर्देश नहीं दे पा रहा. उसे वह सड़क भी नहीं मिल रही, जिस पर पते वाला घर है.

तभी उसने एक भारतीय को सड़क के साथ, पैदल चलने वालों के रास्ते यानी साइडवॉक पर सैर करते देखा. उसने अपनी कार उसके पास ले जाकर धीमी की, और खिड़की का शीशा नीचे करके पता उसकी ओर बढ़ाते हुए पूछा — "सर, क्या आप बता सकते हैं कि यह घर कहां है?" वह भारत के दक्षिण से एक अधेड़ उम्र के सज्जन हैं, पता देख कर बोले —

''मैं तो बेटे के पास आया हुआ हूं, नया हूं, यहां का कुछ नहीं जानता. उससे पूछें... उन्होंने एक श्वेत व्यक्ति की ओर इशारा करते हुए कहा, जो सामने के घर के आगे खड़ा लान को पानी दे रहा है.''

उसने कार वहीं रोकी और पता लेकर उस व्यक्ति की ओर बढ़ गया. वह व्यक्ति घास को पानी देना छोड़ कर उसकी ओर आ गया.

''हेलो.''

''हाय.''

''कैन यू टेल मी वेयर इज़ दिस हाउस?''

श्वेत व्यक्ति ने उसके हाथ से पता ले लिया. मुस्कराते हुए कहा — ''यू आर वैरी क्लोज़ टू दिस हाउस. आई सॉ यू टेकिंग राउंडज़ फॉर लुकिंग द हॉउस.'' यह कह कर उसने अपने एक हाथ की हथेली पर दूसरे हाथ की पहली उंगली से लकीरें खींचकर रास्ता बता दिया. उसने घर का रास्ता समझा और थैंक्स करके कार में आ बैठा. रास्ता बताने का यह नया तरीक़ा उसे बहुत पसंद आया.

स्थानीय व्यक्ति ने जो रास्ता बताया, उसी के अनुसार उसने अगली लेन से दाएं लिया और लेन के अंत में घर नज़र आ गया, जो नया बना ही लगता है और उसके साथ वाला घर बन रहा है. उसने कार वहीं थोड़ी दूर पार्क कर दी.

वह सही स्थान पर आ तो गया, पर अब कार से निकलने की उसकी हिम्मत नहीं हो रही. उसके मस्तिष्क के अखाड़े में वर्तमान और अतीत की कुश्ती ने हलचल मचाई हुई है. उसे ताज्जुब हो रहा है, अचानक बीते वर्षों ने उसे ऐसे कैसे बांध लिया.

अतीत उस पर इतना हावी हो गया है कि उसे कार सीट से हिलने ही नहीं दे रहा. वह उस घर के अंदर कैसे जाए ! वह कार सीट से जैसे जकड़ गया है.

अतीत की यही तो परेशानी होती है, उसकी परतें खुलने लगती हैं तो खुलती चली जाती हैं. यादें मंडराने लगती हैं तो पीछा नहीं छोड़तीं. उसके साथ यही तो हो रहा है. पिछले दो दिन से बीता हुआ समय उसके वर्तमान पर हावी हो रहा है. स्वयं को शांत करने के लिए उसने कार सीट पर ही पीछे की ओर सिर टिकाकर आंखें मूंद लीं.

एक फ़ोन कॉल और स्नेहिल आवाज़ ने उसे भावुक कर दिया था — ''हेलो.''

''इस दिस मिस्टर आनंद.'

''येस.''

''मिस्टर आनंद कोई आपसे बात करना चाहता है, लीजिए बात कीजिए.''

वह हैरान था, कौन उससे बात करना चाहता है? तभी एक शहद में घुली मीठी आवाज़ उसे सुनाई दी — 'नंदी'. फ़ोन के इस तरफ़ और उस तरफ़ आवेगों की बारिश के छींटे पड़ने शुरू हो गए; दोनों ओर तन-मन भीग गया. कार्यस्थल की व्यस्तता के बावजूद आनंद घंटा भर उस आवाज़ से बातें करता रहा. वह उन्हें मिलने के लिए उत्साहित और उत्सुक हो गया था. एक प्रॉजेक्ट की अंतिम तिथि दूसरे दिन की होने के कारण, दो दिन बाद उनसे मिलने का समय तय किया गया. दो दिन वह ऐसे बग़ीचे में घूमता रहा, जहां सतरंगी फूल खिले हुए हैं. उनकी ख़ुशबू वह अपने ऑफ़िस में, घर में, बिस्तर पर यहां तक कि अपनी सांसों में महसूस करता रहा. एक अजीब-सी ख़ुमारी चढ़ी रही. मधुर-मधुर आवाज़ें नंदी-नंदी पुकारती रहीं. एक ध्वनि कानों में गूंजती रही, जो वह पूजा-गृह में बचपन में सुना करता था.

बचपन के उस घर की ख़ुशबुएं उसके भीतर अब तक बसी हैं... बनारसी, बलदेव और हरि उनके यहां काम करने वाले थे, पर वे उसके चाचा-ताऊ थे. उस घर में शहद घुले वचन और प्यार ही तो उसने देखा था. कामगारों के साथ भी कोई ऊंचा नहीं बोल सकता था. वह अक्सर महसूस करता है, छुटपन में भीतर समाई मोहब्बत की ख़ुशबुएं उसे इतना सुगंधित करती रहीं कि वह किसी से नफ़रत कर ही नहीं सका. हालांकि नफ़रत के बीज कई बार बोये गए. पर प्यार की छाया में पनप नहीं सके.

पहले तो उसे यक़ीन नहीं हुआ. विदेश में आकर कोई अपना जो कहीं खो गया था, इस विश्वास के साथ उसे ढूंढ ले, फ़ोन करे कि उसके भीतर उनके प्यार की चिंगारी बुझी नहीं होगी और... नंदी के भीतर मोहब्बत की ज्योति जो उन्होंने जलाई थी, सच में जल रही है.

विदेश आकर तो वह कब का आनंद से नंदी बन चुका है और सच में नंदी ने वह ज्योति कभी अपने अंदर बुझने ही नहीं दी.

उन्हें कभी भूला नहीं. उसके बचपन के दस वर्षों की यादें उनके साथ जुड़ी रहीं. यहां आकर तो वह ख़ुद को उनके और भी क़रीब महसूस करता रहा है. यहां यादों के सहारे ही तो मनुष्य अपने सुख-दुःख काटता है. हां, आनंद बन कर वह वर्षों उन सबसे दूर रहा. नंदी बन वह उनके क़रीब हो गया था.

नंदी और आनंद का अंतर्द्वंद्व तब से शुरू हुआ जब मम्मी ने नंदी को आनंद से छीन लिया और आनंद अकेला रह गया.

आनंद के लिए वह कठिन समय था, वह सिर्फ़ दस साल का था. पर ज्यों-ज्यों वह बड़ा हुआ, आनंद ने अपने भीतर नंदी को सहेज कर ज़िंदा रखा.

यादों के परिंदे फड़फड़ाने शुरू हो गए...मस्तिष्क में हलचल मच गयी. अट्ठाईस साल तक वह जिस परिवेश में पला; वहां घनघोर विरोधाभास था. ज्यों-ज्यों वह बड़ा हुआ कुछ बातें उसे समझ आने लगीं. अब तो उसे बहुत कुछ स्पष्ट हो चुका है. परदेश के परिवेश और कार्यप्रणाली ने उसका विवेक जगा दिया. कहावत है, बुद्धिमत्ता कइयों में होती है पर बुद्धिमान कम ही होते हैं. इस देश ने उसकी अंतर्दृष्टि व्यापक कर दी है. चीज़ों को देखने के नज़रिए में ही परिवर्तन आ गया है. भिन्न-भिन्न देशों के भिन्न-भिन्न लोगों के साथ काम करते हुए उसमें एक अलग तरह की सजगता आ चुकी है.

वह अपने पापा को बताना चाहता था. उम्र के इस पड़ाव तक जो काम वे नहीं कर पाए, वह करने जा रहा है. उसने जब भी फ़ोन किया, मम्मी ने उठाया और वह कुछ भी नहीं कह पाया. मम्मी को पता चलने का मतलब है घर में क्लेश. यहां आने के बाद उसने मम्मी की कई बातों का विरोध किया. मम्मी उसे तो कुछ नहीं कहतीं, पर पापा की शामत आ जाती है. उन्हें मम्मी के कटाक्ष सुनने पड़ते हैं —

''तुम्हारे बेटे तुम पर गये हैं. घुन्ने चालाक. अपनी मर्ज़ी करने वाले. मेरी परवाह कभी तुमने की है जो वे करेंगे. बेटी है जो सिर्फ़ मुझे समझती है.''

कभी वह अपनी मम्मी से बहुत प्यार करता था, पर दिल्ली आने के बाद वह और उसका भाई दोनों पापा के क़रीब और अपनी मम्मी से दूर होते गए. छोटी-छोटी बातों पर जब उसकी मम्मी सबके सामने उसके पापा को नीचा दिखातीं, उन्हें शर्मिंदा करतीं, दोनों भाइयों को बुरा लगता. हर बार उसके पापा आंखें झुकाकर मम्मी की शाब्दिक प्रताड़ना सहते. उनकी आंखों में समंदर उमड़ता उसने देखा है; जब वह कोरों से बहने को होता तो वे अपने कमरे में चले जाते. उसे कई बार अपने पापा पर ग़ुस्सा आया कि वे कुछ बोलते क्यों नहीं?

दस वर्ष की उम्र तक उसने अपनी मम्मी का बेहद सुंदर रूप देखा था. बाद में अकस्मात उसने जो देखा, वह घबरा गया था.

दस साल तक वह संयुक्त परिवार में पला, बड़ा हुआ. दादा-दादी, चाचा-चाची और बुआ भी थीं घर में. वह सबका नंदी था. सबकी बांहों में कूदते-फांदते बचपन बीता था. दादा-दादी के प्यार से सराबोर खिलंदड़े जीवन के पहले दस वर्ष उसे भुलाये नहीं भूलते.

उसने घर में बस प्यार देखा था. दादा-दादी के घर में नौकरों के साथ भी मित्रवत व्यवहार किया जाता था. सारा परिवार बड़ा मीठा और मोहब्बत से बोलने वाला था. नफ़रत क्या होती है, वह नहीं जानता था. पता नहीं किस की नज़र लग गयी.

बुआ की शादी हो गयी और शादी के बाद ही सब कुछ बदल गया. दरअसल बुआ की शादी के बाद दादा जी ने अपनी पूरी जायदाद तीन हिस्सों में बांट दी. बदकिस्मती से उसके पापा का तबादला भी उन्हीं दिनों दिल्ली में हो गया. बदकिस्मती इसलिए कि दिल्ली आकर ही घर का सुख चैन समाप्त हो गया.

दिल्ली के नए घर में प्रवेश करते ही जीवन का एक दुखद अध्याय शुरू हुआ. दिल्ली में उसका ननिहाल है. उसके ननिहाल वाले ददिहाल परिवार से अलग सोच के हैं, यह वह बचपन से ही समझ गया था. एक दिलों में जीने वाले, प्रकृति, जानवर और पशु-पक्षियों तक को चोट न पहुंचाने वाले, दूसरे सामंती सोच वाले. सामने वाले को डरा कर, दबा कर जीने वाले.

दिल्ली में नए घर की पूजा समाप्त ही हुई थी कि नानी जी ने पापा की ओर देखते हुए मम्मी को कर्कश आवाज़ में कहा — ''सुगंधा, तेरे ससुर ने तो तुम लोगों के साथ बहुत अन्याय किया. दस साल देव जी की कमाई उन्होंने ली और तुमने जी तोड़ सबकी सेवा की और जब जायदाद के बंटवारे

की बारी आयी तो सबको एक ही तराज़ू में तोल दिया. बेटी की शादी जब इतनी धूमधाम से कर दी थी, तो उसका जायदाद पर क्या हक़?''

कर्कश आवाज़ का मीठा उत्तर पापा ने दिया — ''मम्मी जी, सिर्फ़ मेरा ही नहीं, मेरे बाऊ जी, भाई, भाभी और बहन सबके वेतन भी तो घर में ख़र्च होते थे. और शादियां तो हम सबकी धूमधाम से हुई हैं, फिर केवल काजल की शादी को क्यों गिना जाए. उसका भी जायदाद पर उतना ही हक़ है, जितना हमारा.''

''बड़े बेटे का हक़ हमेशा दूसरों से ज़्यादा होता है.'' नानी जी ने फिर मम्मी को बड़े तल्ख़ अंदाज़ में कहा.

''क्या आप अपने बड़े बेटे को बाक़ी दोनों से ज़्यादा हिस्सा देंगी?'' पापा पहली बार तल्ख हुए थे. शायद उन्हें आभास हो गया था कि भविष्य में बातें बढ़ सकती हैं और वे पहले ही उन्हें रोकना चाहते थे.

मम्मी की ऊंची बिलखती आवाज़ उभरी, जिसे सुन वह और उससे दो साल छोटा भाई दोनों डर गए. उनके मासूम दिल धकधक करने लगे...कैसा दृश्य था वह! चारों तरफ़ ऊंची-ऊंची आवाज़ें. उसने इतनी ऊंची आवाज़ें घर में पहले कभी नहीं सुनी थीं. सभी धीमा बोलते थे. उसके बदन में झुरझुरी हुई... मम्मी रो-रो कर नानी जी को कह रही थीं — ''मां देखा इनका लहजा, समझ गयीं न मैंने क्या-क्या सहा होगा वहां. दस साल मैंने जैसे वहां काटे हैं, मैं ही जानती हूं. आपके संस्कारों की बदौलत चुप रही और और सब सह गयी. शुक्र है मैं दिल्ली में अपनों में आ गयी.''

पापा और वे दोनों भाई हैरान से खड़े रहे... कुछ समझ नहीं आ रहा था... हंसती-खेलती सारे परिवार में घुली-मिली मम्मी यह सब क्या कह रही हैं और इतना रो क्यों रही हैं...

इसी शोर में फ़ोन की घंटी बजी... पापा ने फ़ोन उठाया. गृह प्रवेश पर पटियाला से दादा जी का फ़ोन था.

''पैरी पौना (चरण वंदना) बाऊ जी.'' पापा ने बस इतना कहा, उसी समय नानी जी ने पापा के हाथ से फ़ोन लेकर दादा जी को बुरा-भला कहना शुरू कर दिया. नानी की ऊंची आवाज़ से उसकी छोटी बहन डर गयी और मम्मी की गोद में मुंह छुपा का रोने लगी. आनंद और उसके छोटे भाई कमल ने देखा उनके पापा हक्के-बक्के बेचैन से खड़े हैं, उनके मुंह से शब्द नहीं निकल रहे.

नानी जी जब फ़ोन रख कर हटीं, तो पापा बस इतना ही कह पाए — ''सुगंधा इतना झूठ क्यों?'' पापा बोल नहीं पा रहे थे, उन्हें बहुत बड़ा झटका लगा.

यह सुन नाना जी खड़े हो गये, बड़े कड़े अंदाज़ और रोबीली आवाज़ में बोले — ''देव भुल्लर, आप हमारे सामने हमारी बेटी को झूठा कह रहे हो, तो पटियाला में जहां वह आपके भरे-पूरे परिवार में अकेली थी, उसके साथ क्या सलूक होता होगा, हम सब समझ गए हैं.''

नानी जी भी बड़ी अकड़ कर बोलीं — ''देव जी, आज के बाद अगर आपने हमारी बेटी को कुछ कहा तो आप पटियाला रहेंगे और सुगंधा बच्चों के साथ यहां.''

पापा नि:शब्द स्तब्ध खड़े सब देख रहे थे. वे दोनों भाई उनसे जाकर लिपट गये. पापा ने उन दोनों के सिर पर हाथ रखा और उन्हें लेकर ऊपर बेडरूम में आ गए. पापा ने उन दोनों को गले से लगा लिया और उनकी आंखों से टपकी गर्म बूंदें उनके सिर के बालों में गिरीं, दोनों भाइयों ने उन बूंदों को महसूस किया.

''पापा, मम्मी झूठ बोल रही थीं... आपने कुछ कहा क्यों नहीं?'' उसने पूछा था.

''बेटा जब घर का मालिक, घर बनाने वाला ही घर को जला रहा हो तो कोई आग बुझाने के लिए पानी कैसे डाल सकता है?''

''पापा, मम्मी, नाना, नानी जी आप पर ग़ुस्सा क्यों हो रहे थे?'' कमल ने सवाल किया.

''काश, मुझे पता होता। मुझे तो ख़ुद समझ नहीं आ रहा यह सब क्या हो रहा है और क्यों हो रहा है?'' उस रात वे दोनों पापा के साथ सो गए. उसकी मम्मी कमरे में नहीं आयी थीं. गृह प्रवेश के बाद घर में एक ही आवाज़ गूंजी. पापा तो जैसे ख़ामोश हो गए. वह आवाज़ मम्मी की होती थी.

''नंदी बेटा, उठ जा, स्कूल को देर हो रही है.'' पापा की आवाज़ सुनकर मम्मी क्रोध में चीख़ उठीं — ''तुम लोग कितने उजड्ड हो, किसी का नाम भी ढंग से नहीं ले सकते. नाम बिगाड़ कर बड़ा मज़ा आता है आपको और आपके परिवार को. ख़बरदार आज के बाद किसी ने इसे नंदी कहा. मैंने इतना सुंदर नाम रखा है इसका 'आनंद'.''

''और आनंद तुम भी सुन लो, अगर किसी के नंदी

कहने पर तुमने उत्तर दिया, तो तुम्हें सज़ा मिलेगी.'' उस दिन से वह आनंद बन गया. नंदी उसने अपने भीतर छुपा लिया. वह दिन और वह क्षण ऐसा था, जब वे दोनों भाई पहली बार उस मम्मी से डर गए थे, जिसने दस साल उन्हें बेहद प्यार दिया था. अब उनकी मम्मी का व्यक्तित्व ही बदल गया था. हर बात ग़ुस्से और रौब से करतीं.

''मम्मी बहुत बदल गयी हैं.'' मम्मी के जाने के बाद उसने धीरे से कहा.

''हां, बदल तो गयी हैं, क्यों? कारण नहीं पता बेटा.'' पापा ने लम्बी सांस ली थी. वह अक़्सर उन लम्हों को याद कर उनकी चीर-फाड़ करता है.

सुबह स्कूल उन्हें पापा तैयार करके भेजते. दोनों भाई स्कूल के बाद बाहर खेलते रहते, ज्योंही पापा घर आते तो वे घर आ जाते. कमल उसके बहुत क़रीब आ गया था और वे दोनों पापा के. मम्मी ने उनकी तरफ़ ध्यान देना बंद कर दिया था वैसे तो पहले भी मम्मी उनकी ओर से निश्चिंत रहती थीं. उन्हें दादा-दादी और बुआ ने पाला है. दिल्ली आकर मम्मी अधिकतर अपनी मां, बहनों और भाभियों के साथ रहना पसंद करती थीं. किटी पार्टियों, अपनी सहेलियों और क्लबों में अधिक समय बिताती थीं. उसके पापा ही उन तीनों को संभालते.

एक दिन वह जिद्द कर बैठा.

''पापा, मम्मी घर पर नहीं हैं, प्लीज़ दादा जी से बात करवा दें.''

''नहीं करवा सकता. तुम्हारी मम्मी बाहर जाने से पहले फ़ोन को ताला लगा जाती हैं.'' कह कर पापा रो पड़े थे. वह समय लैंडलाइन फ़ोन का था.

वे बड़े हो रहे थे, घर में हो रही छोटी-बड़ी सब बातें समझते थे. एक दिन घर में फिर झगड़ा हुआ. पूरा ननिहाल परिवार घर में इकट्ठा था. उन्हें समझ आ गया था. दादा जी ने जो जायदाद तीन हिस्सों में बांटी थी. उनके हिस्से को मम्मी नाना जी और मामा जी के बिज़नेस में लगाना चाहतीं थी. पापा को तो बोलने का मौक़ा ही नहीं दिया जा रहा था. मम्मी ने सब कागज़ात नाना जी और मामा जी को दे दिए. फिर कुछ दिनों बाद पापा और मम्मी के हस्ताक्षर भी करवा लिये गए.

उसे पापा पर ग़ुस्सा आता. वे इतने ख़ामोश क्यों हो गए हैं? क्यों वे कुछ नहीं बोलते ?

वे दोनों भाई ग़ुस्सा पी जाते, इतने बड़े नहीं हुए थे कि अपने पापा से कुछ पूछते और मम्मी को कुछ कहते.

जिस दिन उसे आई. आई. टी. मुंबई में प्रवेश मिला. वह, कमल और पापा बहुत ख़ुश थे. वह पटियाला बात करना चाहता था, दादा जी और दादी जी को बताना चाहता था. पापा की बात याद आ गयी थी.

''अपने पांव पर खड़ा हो कर अपने निर्णय और चुनाव करोगे तो कोई तुम्हें कुछ नहीं कह पाएगा. पूरी क़ायनात तुम्हारी होगी.'' बस यह सोच कर चुप हो गया था.

उस दिन आकाश में बहुत बिजली कड़की थी. और वह उन्हीं के घर पर गिरी थी. समाचार आया कि नाना जी और मामा जी दिवालिया हो गये हैं और उनका सब कुछ समाप्त हो गया था. पापा वहीं सोफ़े पर धम्म से बैठ गये. वह और कमल दोनों पापा की ओर तेज़ क़दमों से बढ़े थे. वे घबरा गए थे कि कहीं पापा को कुछ हो न जाये. पर वे ठीक थे.

बहुत कुछ लुट गया था, फिर भी आनंद के पापा ने उसकी मम्मी को कुछ नहीं कहा. बस मम्मी से जो थोड़ी बहुत बातचीत होती थी, वह बंद कर दी थी. सोते तो वे दोनों पहले ही अलग-अलग कमरों में थे.

वह आई. आई. टी. मुंबई गया और कमल आई. आई. टी. हैदराबाद. उनके पापा ने उनकी फीसें, ख़र्चे की व्यवस्था कहां से की, न मम्मी ने पूछा, न पापा ने बताया.

उसे गाड़ी में चढ़ाते समय उन्होंने बस इतना कहा था — ''तुम हमेशा पूछते थे, पापा आप मां को कुछ कहते क्यों नहीं? मुझ पर नाराज़ भी होते थे. बेटा, सुगंधा मेरे तीन बच्चों की मां है. तुम्हारी मां है, अपने बच्चों की मां को कैसे कुछ कहता. जितने झूठे आरोप उसने मुझ पर और मेरे परिवार पर लगाए हैं, चाहता तो तलाक ले सकता था. पर तुम तीनों हमारे झगड़े में भटक जाते. तुम अपनी मम्मी के परिवार को जानते हो. मैं समझ गया था उनकी नज़र हमारे हिस्से पर है और सुगंधा उनके षड्यंत्र में आ चुकी थी. मुझे बहुत बाद में पता चला, जायदाद के बंटवारे के बाद ही तुम्हारे नाना जी ने मेरी तबदीली यहां करवाई थी. तुम जानते हो राजनीतिक क्षेत्रों में वे बहुत पॉवरफ़ुल हैं. मुझे परिवार से दूर कर ही वह यह सब कर सकते थे. बाऊ जी ने यह अच्छा

किया था, ज़मीन नहीं बांटी थी. वह बच गयी.''

''पर आप ख़ुद तो बाऊजी-बीजी से मिल सकते थे. हमारी फ़ोन पर बात तो करवा सकते थे.''

''बेटा, मैं यह करता तो रोज़ उन्हें गालियां पड़तीं, नए-नए दोष लगते. बीजी ने ही कहा था, बस टूट जा हमसे और जुड़ जा अपने परिवार से. अपने बच्चे पाल, उन्हें अच्छा इंसान बना. अगर ज़िंदा रहे तो वे हमें ज़रूर मिलेंगे. जिस वृक्ष की जड़ें मज़बूत होती हैं, उसका तना कभी नहीं सूखता, खूब मज़बूत रहता है. बेशक वर्षों बाद उसकी छांव में लौटो, वही छाया, वही स्निग्धता मिलती है, जो वर्षों पहले छूट गयी होती है. सोचो तो कभी देर नहीं होती... बस धैर्य रख. वही मैंने रखा.''

''पर सबसे टूट कर भी घर का माहौल अच्छा कहां रहा !'' उसने पापा को उदास नज़रों से देखा था.

''बेटा, मैंने कोशिश तो पूरी की थी.'' विवशता उनके शब्दों में झलकी.

''पहले दस साल हमारे मज़बूत थे और आपका साथ था. वरना जिस माहौल में हम पले हैं, कुछ भी हो सकता था.'' कहने के बाद वह और उदास हो गया और उसी मूड में उसने पूछा — ''पापा, मम्मी कैसे इतना बदल सकती हैं?''

''बेटा, असली सुगंधा आज वाली है. पटियाला के माहौल ने उसे अपनी तरह ढाल लिया था. माहौल का कितना असर होता है. यह तुम अपने घर से सीख सकते हो.''

पापा से की हुई स्टेशन पर सार्थक बातचीत एक टॉर्च की तरह उसके साथ रही.

आई. आई. टी. में उसने कई बार पटियाला फ़ोन करना चाहा. बस शर्मिंदगी हाथ रोक लेती थी. मम्मी की कमी पर वह गिल्टी फ़ील करता रहा. कुछ बन कर ही फ़ोन करूँगा फिर मम्मी भी कुछ नहीं कह पायेंगी. तब विकल्प और चुनाव उसके होंगे, किसी और के नहीं.

फ़ोन की धुन ने स्मृतियों का सिलसिला तोड़ दिया. पापा का फ़ोन है...''हेलो, पापा.''

''बेटा, तुम रोज़ कॉल करते हो, सुगंधा पास होती है, तुम कुछ कह नहीं पाते, कोई ख़ास बात है!''

''जो काम आप नहीं कर पाए, मैं करने जा रहा हूं. बुआ जी, यहीं मेरे शहर में अपने बेटे के पास आयी हुई हैं, उनका बेटा मेरे शहर में है पर मुझे पता नहीं था, उसने मुझे ढूंढ़ लिया. दादा-दादी जी भी आए हुए हैं. उनके घर के सामने कार में बैठा हूं, मिलने जा रहा हूं.

'काजल के बेटे को पता था कि वह तुम्हारे शहर में है, या तुम उसके शहर में हो जो उसने तुम्हें ढूंढ़ लिया. मज़ाक मत करो.' देव भुल्लर नाराज़ हो गए.

'पापा, नाराज़ मत होइए, इस देश में आकर मैंने पहला फ़ोन पटियाला में ही किया था. घंटी बजती रही, किसी ने फ़ोन उठाया नहीं. जब-जब बचपन की सुधियां घेरतीं, मैं पटियाला फ़ोन करता. निराशा हाथ लगती. मैंने मान लिया था, उस घर में अब कोई नहीं रहता, या नंबर बदल गया है. पर नहीं, किसी ने मेरा नंबर पहचान लिया. मिस्ड कॉल देख कर सभी सोचते रहे कि मार्किटिंग वाले फ़ोन कर रहे हैं, पर काजल बुआ का बेटा अंकित जो उन दिनों पटियाला में था, उसने नंबर देख कर कहा कि यह उसके शहर का नंबर है और शायद नंदी शिकागो में है. अंकित तो यहां आ रहा था, सभी मुझे मिलने उसके साथ आ गए. आप तो जानते हैं दादा-दादी जी को, फ़ोन करना उन्हें बिलकुल अच्छा नहीं लगता, सीधे जफ़्फ़ी में लेकर मिलना उनकी पहली और अंतिम पसंद है, बस चले आए मिलने.''

यह सुनते ही दूसरी तरफ़ ख़ामोशी छा गयी. वह महसूस कर रहा है, दूसरी तरफ़ आंखें कुछ कह रही हैं, लंबी सांस छोड़ने की आवाज़ के साथ हिचकी आयी...

पापा की धीमी आवाज़ उभरी — ''बीजी सही थीं... सही कहा था बीजी ने. सोचो तो कभी देर नहीं होती.'' और फ़ोन बंद हो गया.

आनंद कार से निकला और कार को लॉक करके, उस घर की ओर बढ़ गया; जिसके दरवाज़े के उस पार कुछ जोड़ी आंखें प्रतीक्षारत हैं. घर की तरफ़ क़दम बढ़ता हुआ आनंद धीरे-धीरे नंदी में परिवर्तित होता जा रहा था.

१०१, गाईमन कोर्ट, मोरिंस्विल,
नॉर्थ कैरोलाइना- २७५६०, यू.एस.ए.
मो. : +१-(९१९)८०१-०६७२
ई-मेल : sudhadrishti@gmail.com

मूक क्रंदन

डॉ. वीणा विज 'उदित'

जन्म : लाहौर, शिक्षा : एम. एड. (स्वर्ण पदक) १९६९, जबलपुर वि. वि.

"कुछ चाय वाय पी हो कि नहीं? - सुबह उठते ही रियाज़ करने बैठ जाती हो बिटिया!''

दद्दा के पूछने पर मेरे हाथ की उंगलियां सितार के तारों पर वहीं रुक गयीं और उनकी लाड़ भरी परवाह मुझे अभिभूत कर गयी. मैंने उनकी भावनाओं को समझते हुए कहा — 'हम चाय पीकर बैठे हैं दद्दा, काहे चिंता किए जाते हो?' और सितार के तारों पर मेरे बाएं हाथ की उंगलियां पुन: दबने व दाहिने हाथ से मिज़राब तार के स्वरों पर नृत्य करने लग गया था. मेरी दिनचर्या का आग़ाज़ यहीं से होता है, कई वर्षों से. मैट्रिक करके आगे प्राइवेट बी. ए. करने की सोच ली थी मैंने. वैसे उन दिनों कॉलेज़ जाने का रिवाज़ ही नहीं था क्योंकि हमारी मुड़वारा तहसील में तब लड़कियों का अलग से कॉलेज़ ही नहीं था. लड़कियां घर के काम-काज़ सीखती थीं. सिलाई, कढ़ाई, बुनाई और रसोई के ढेरों काम. इन्हीं में निपुणता पाकर फिर ब्याह दी जाती थीं.

बड़के भैया ने शादी के अलावा और कोई काम तो कभी नहीं किया लेकिन मेरी एफ. ए. (बारहवीं) के लिए किताबें मंगवा दी थीं. जिन्हें सोने से पूर्व ऊपर कमरे में मैं कभी-कभार पढ़ लिया करती थी. बाक़ी, रियाज़-रियाज़ और बस रियाज़ में ही मेरा मन लगता था. सितार के तार मेरे अंतर्मन में बसे रहते थे जैसे किसी निर्मल झरने का ऊंचाइयों से गिरता जल, कल-कल की मधुरिम झंकार के स्वर उच्चारता है. मेरे भीतर भी यह कोमल एहसास बसा रहता रहा ता-उम्र.

हवेलीनुमा पुराना घर था हमारा, जिसके पूजा घर से सटा यह हाल

डॉ. वीणा विज 'उदित'

निवास : चार माह कश्मीर, ६ माह अमेरिका व २ माह जालंधर पंजाब.
कलाकार, कवयित्री व साहित्यकार

लेखन : हिंदी, पंजाबी, उर्दू और अंग्रेज़ी में.

विशेष : १९६३ में गणतंत्र दिवस परेड में मध्यप्रदेश का प्रतिनिधित्व. नृत्य-नाट्य में बचपन से ही गहन अभिरुचि. १९८३ से दूर-दर्शन और आकाशवाणी जलंधर से जुड़ाव. सन २००० तक हिंदी और पंजाबी के तक़रीबन सौ नाटकों, धारावाहिकों व ६ फ़िल्मों में अभिनय.

सम्मान : समय-समय पर विभिन्न संस्थाओं द्वारा सम्मानित, पंजाब कला साहित्य अकादमी, श्री कृष्ण कला साहित्य अकादमी, इंदौर, सर्वभाषा संस्कृति समन्वय समिति-कश्मीर, सन् २०१८ में पंजाब कला साहित्य अकादमी द्वारा 'आधा जहान सम्मान', 'अकादमी अवार्ड' और 'विद्यावाचस्पति' सम्मान.

संप्रति : देश-विदेश में रहते हुए राष्ट्रीय एवं ई-पत्रिकाओं से जुड़ाव. विदेशी व प्रवासी बच्चों को हिंदी सिखाने एवं भारतीय संस्कृति से पहचान कराने में प्रयत्नशील. कई रचनाएं अंग्रेज़ी, पंजाबी एवं उर्दू में अनूदित.

प्रकाशित कृतियां : ३ काव्य संग्रह, २ कहानी संग्रह, सुरमई कहानियां--पंजाब सूफी मंच द्वारा उर्दू में प्रकाशित, 'आईना और एक्स'--आत्मकथा (प्रकाशनाधीन), ५० संस्मरण – मातृभारती पर प्रकाशित.

था, जिसमें बहुत से साज रखे रहते थे. मेरा सितार,अरुणा की तबला जोड़ी, करुणा का सरोद और जो सभी का था पर किसी ख़ास का नहीं था- हारमोनियम !

मेरा सितार बजता था तो अरुणा आकर तबले पर थाप देकर संगत करने लग जाती थी. करुणा भी कहां रुक पाती थी वह भी आकर सरोद के भारी भरकम तार छेड़ देती थी. ऐसे पलों में हमारा घर मां सरस्वती का मंदिर लगता था. हवेली में मौजूद सारे के सारे बाशिंदे हाल की ओर खिंचे चले आते और भीतर एकत्र होकर संगीत के स्वरों की झंकार में डूब जाते थे. ऐसी पावन वेला में बाहर तख़्त पर बैठे दद्दा और अम्मा का चेहरा गर्व से तन जाता था. मानो साक्षात शारदा मैया भीतर पधारी हों.

हमारी हवेली सरोवर के सिर पर विराजमान थी तो सारा शहर हम पर रश्क करता था. दद्दा बिना ताज़ के राजा यानी सदैव शहर के बेताज़ बादशाह रहे. जब तक वे जिंदा रहे तब तक हर साल शहर की सबसे शानदार दशहरे की रामलीला वही करवाते थे. स्टेशन से लेकर मेन रोड के आख़िरी सिरे तक लकड़ी के खंभों पर लाउडस्पीकर लगवा देते थे और दशहरे के दिन जुलूस में सबसे पहले वाले ट्रक में राम, लक्ष्मण, सीता के चरणों में गद्दी पर चकाचक सफ़ेद रेशम के कुर्ते में बैठे रहते थे. जाती हुई गर्मी और आती हुई सर्दी की मस्त दोपहर से जुलूस का शुभारंभ और विजयादशमी का पर्व यहीं से मनाना प्रारंभ होता था. पीछे कतारबद्ध नवदुर्गा की सजी हुई गाड़ियां निकलती रहती थीं.

देर रात तक और शहर के बाहर मैदान में नदी किनारे रावण का पुतला जलाया जाता था मेघनाथ और कुंभकरण के पुतलों के साथ. मानो ज़माने भर का पाप नष्ट हो जाता था उनके जलते ही. मुड़वारा तहसील और आसपास के सभी गांवों से जनता एकत्र हो जाती थी दशहरे के इस शानदार पर्व को मनाने की खातिर.

हमारे घर की शान और बरकत इतनी थी कि ना मालूम भंडार गृह में कितना खाना बनता था कि जो भी चबूतरे पर आ जाता तो जीम (खा) कर ही जाता. मजाल है जो रात के बारह बजे तक भी चूल्हों में आग ठंडी पड़े.

गोधूलि की बेला में तो तलैया किनारे हवेली के भीतर और बाहर का चबूतरा भरा ही रहता था ज़रूरतमंदों से. ग़रीब, अमीर, जो भी कुछ आस लेकर आता पूरा करवा कर ही लौटता. बड़े से तख़्त पर एक तरफ अम्मा (काली आदिवासी) अपने पान के साजो समान की चांदी की संदूकची सजाए, हाथ में सरोता से सुपारी काटतीं, मुंह में गिल्लौरी डाल के मुंह चलाए रहतीं, तो दूसरी तरफ दद्दा बैठे फरियादियों की फरियाद सुन कुछ उपाय बताते या जैसी दरकार हो यानी रुपए पैसे की मदद भी करते रहते थे. भीतर से तार सप्तक के स्वरों की झंकार आकर सारा वातावरण

मधुर संगीतमय बनाए रहती थी. सितार और सरोद संग तबले की थाप मानो मस्ती बिखेर देती थी. शहर के आम लोग बाहर सड़क से ही सिर नवाकर हाथ जोड़कर वहां से गुज़र जाते थे मानो किसी देवालय के सामने से गुज़र रहे हों. या भीतर देवताओं का दरबार सजा हो और आदर से उसके सामने से गुज़रना ज़रूरी हो.

वैसे इसमें सुबह उस समय विराम लग जाता था जब रसोई घर से जो एक विस्तृत आंगन जैसा था सब महाराजिन लोग खाना बनाने में जुट जाती थीं. मैंने ही तो भंडार गृह से उन्हें सामान देना होता था. सब्जियों के टोकरे सिर पर धरे अपने खेतों से बाई लोग भी तभी आ पहुंचती थीं. फिर तो पूछो ना सिलबट्टा लेकर कोई बेल की चटनी, तो कोई पुदीने की चटनी पीसने लग जातीं, तो कोई खड़ा मसाला पीसने लग जाती थीं. चाय की पतीली तो सारा दिन एक चूल्हे पर एकछत्र राज करती थी. क्योंकि ऐसा तो कभी हुआ ही नहीं था कि हवेली की दहलीज पर कोई आया हो और बिना चाय पिए चला गया हो. आसपास के इलाक़ों से और दूर-दराज के गांवों से भी लोग आते थे. ख़ूब चहल-पहल लगी रहती थी. हम तीनों बहनों से छोटा राजन हाई स्कूल में था तो उसके दोस्त भी वहां मंडराते रहते थे. उन्हीं में मनोज जो एक बार अपने बाबा के साथ दद्दा को मिलने आया तो यहीं का होकर रह गया था. उसे संगीत पसंद था, वह भी कॉलेज़ से सीधे यहीं आ जाता था. वह भोली सी सूरत बनाए रहता और बड़के भैया से लेकर राजन तक सभी उसके दोस्त थे. रसोई घर में हक़ से मांगकर-खाता-पीता था. देखने में अंग्रेज़ लगता था. हवेली के चबूतरे पर आने जाने वालों के मेले में किसे फ़ुर्सत थी कि उससे कुछ पूछता. उसी घर का लगता था क्योंकि दद्दा भी लंबे-ऊंचे, गोरे- चिट्टे, रुआबदार थे.

उनकी शादी का भी एक क़िस्सा था — पहली बीवी राज घराने से थीं लेकिन पहले बच्चे की जचकी में ही मर गयीं,

उन दिनों अंग्रेज़ों के विरुद्ध गांधी बाबा के जुलूस में सबसे आगे झंडा पकड़े एक आदिवासी लड़की थी. तो बस उसी के साथ राजनीति के जोश में पुनर्विवाह कर लिया था. यही हमारी अम्मा थीं. दोनों का रंग गोरा और काला ऐसा मिला कि हम लोग सब बच्चे गेहुंए रंग के पैदा हुए. सफ़ेद धोती में हमारी काली अम्मा सिर पर उल्टा पल्लू डाले मुंह लाल किए रहतीं. कुछ तो था उनमें जो दद्दा उनको बहुत मानते थे.

'मैहर' हमारे इलाक़े में संगीत का घर माना जाता है. दद्दा वहां से किसी ना किसी संगीतज्ञ को आमंत्रित किए रहते थे, जो बाबा अलाउद्दीन खान साहब को सलाम बजाने आते थे. बाबा के बेटे अली अकबर खान या दामाद पंडित रविशंकर आते तो वे भी इस बैठक में पधार कर मुझ पर थोड़ा बहुत ज्ञान का छिड़काव कर जाते थे. सितार पर मेरी पकड़ बढ़ती जा रही थी. बेशक मेरे बाएं हाथ की बीच की उंगलियों की पोरों से ख़ून रिसता था, जख़्मों में टीस-सी उठती थी. पर गरम-गरम मोम डालकर मैं उनको बेजान करने की कसर नहीं छोड़ती थी क्योंकि तभी रियाज़ संभव था. सुबह राग भैरवी और मटियार छेड़ कर सरोवर किनारे स्वर्गिक अलौकिक अनुभव होता था और शाम ढले राग पीलू मन पर छा जाता था. झाला बजते ही उसकी अनुगूंज हर किसी को सितार की ओर खींचती थी.

स्वयं मैं तो मदमस्त हो ही जाती थी. यूं लगता रहता बिना संगीत के जग सूना होता है. इसमें गतिमान केवल संगीत ही है. प्रसिद्ध सितार वादक निखिल बैनर्जी गोरे-चिट्टे बाबू मोशाय जब आए तो सितार के तारों पर उनकी लयकारी के साथ-साथ उनका चेहरा और उस पर उनकी आंखें भी संगीतमय हो जाती थीं. मैं बावरी-सी, उनकी भाव-भंगिमाओं की दीवानी हो गयी थी. मुझे शिक्षा प्रदान करने के लिए सामने बैठाकर जब वह मुझे सिखाते तो लगता मैं पूरी की पूरी उनके भीतर उतर गयी हूं. तारों की एक-एक झंकार मेरी उंगलियों के पोरों में समा जाती थी. शायद उन्हें भी मेरे चेहरे को पढ़कर कुछ तो भान हो गया था. दद्दा से हर माह सिखाने आने का वायदा किया था उन्होंने. जिसने मेरे भीतर खलबली मचा दी थी. शायद उम्र का तकाज़ा था कि मेरी संवेदनाएं प्यार की बारिश में भीग-भीग जा रही थीं. यूं तो हम सभी बहनें जवान थीं, लेकिन सादगी भरा जीवन जीने के कारण मेरा नाम मीराबाई अपने नाम के अनुरूप था. मीरा कृष्ण की दीवानी थी तो मैं भी निखिलदा को अपना आराध्य बना बैठी थी. इनके आने से रसोई घर की आवभगत में भी कहीं कोई कसर न रह जाए इस ख्याल से मैं महाराजिनों के सिर पर जाकर दबाव डालती थी और तरह-तरह के शाकाहारी व्यंजन बनवाती थी वैसे तो बंगाली बाबू मछली की झोल पसंद करते

होंगे पर हम लोग शाकाहारी भोजन ही झोलदार बना देते थे कि उनकी पसंद का मसाला तो हो जाए कम से कम. बार-बार आने से उनके साथ बेतकलुफी बढ़ गयी थी.

बातों-बातों में मुस्कुराहट और आंखों का लजाना भी आ गया था मुझे. पूरा महीना उन्हीं चार दिनों की प्रतीक्षा में बीतता था. यहां तक कि कभी-कभी अरुणा कह देती, 'दिदिया, तुम निखिल दा के विषय में बात करते हुए अतिरिक्त रूप से संवेदनशील हो जाती हो, काहे?' और मेरी अनुभूतियां गांभीर्य का आवरण... लज्जा युक्त होकर ओढ़ लेती थीं.

उनके प्रस्थान करते ही सारी रात आंख़ों में कटती थी. नींद आंखों के द्वार पर थपकी देने भी नहीं आती थी. मुझे लगता अंधेरे सायों में अचानक पीछे से कोई परछाई आकर मुझे अपनी बाहों के घेरे में ले लेती है कि राग भैरवी के तार छिड़ जाते हैं,

'इंसाफ का मंदिर है ये भगवान का घर है!'

मेरे जहन में उस पर यह गीत थिरकने लग जाता और सब कुछ थम जाता.

याद आ रहा है वह मंजर जब निखिल दा सितार के तारों पर उंगलियां फिराते हुए एक बार कालिदास की प्रसिद्ध रचना 'मेघदूत' पर आधारित गीत के पहले भाग को, 'ओ आषाण के पहले बादल', जिसे संगीतकार एस. एन. त्रिपाठी ने लोक शैली के ही बीच एक राग माला की तरह कंपोज़ किया था. उसमें मेघ मल्हार, मियां की मल्हार और भूपाली के बदलते सुरों के साथ मृदंग पर लाजवाब प्रयोग किया था. इसे बजाया था. जो कि उनका पसंदीदा राग था, तो वहां सभी उनके दीवाने हो गए थे और बाहर भीतर तक भीड़ एकत्र हो गयी थी. तब मैं मीराबाई ... कृष्ण दीवानी मीरा बन गयी थी. हां, मैं मूर्तवत् हो गयी थी. प्रेम अनुराग से भरकर.

'पुनः एक बार...' शाम भई घनश्याम ना आए,'

राग जय-जयवंती पर आधारित लता मंगेशकर की गायी हुई सुंदर रचना उनके सितार के तारों पर जब नाच उठी थी तो पक्के रागों में सरल संगीत ने अजीब समा बांध दिया था. शास्त्रीय रागों का फ़िल्मी संगीत में सर्वाधिक विविधता से उपयोग होने के कारण संगीत कर्णप्रिय हो जाता है और हृदय में मधुर रस आवेग उमड़ आता है. यह आकर्षित बहुत करता है लेकिन उनका कहना था, 'यह लाइट म्यूजिक है, यूं ही सुना दिया. मीरा, आप पक्के राग ही सीखो और उनका ही अभ्यास करो.'

'जी गुरूजी,आपकी आज्ञा शिरोधार्य है.'

जब तक उनके पुनरागमन की तारीख़ का पता चलता मेरा एक-एक दिन मुश्किल से कटता था. इंतज़ार बना ही रहता था मुझे. लगता मैं भीतर ही भीतर गल रही हूं. लेकिन वास्तविकता तो यह थी कि बाहर शायद सभी को पता लग गया था. तभी करुणा ने भी कह दिया, 'दिदिया थोड़ा तैयार हो जाया करो ना. क्या निखिल दा के आने पर ही सजना संवरना होता है.'

मैं आवाक रह गयी थी. दिमाग में कौंध गया था, 'इत्र और प्यार की ख़ुशबू माहौल में एकदम फैल जाती है, छुपाने से भी नहीं छुपती.'

अब मैं भीतर ही भीतर लजाने लग गयी थी. उम्र जो ऐसी थी. जवानी की दहलीज पर पांव अंदर बाहर जो होने लग जाते हैं. दद्दा और अम्मा ने बुला भेजा, 'मोड़ी,(बिटिया) रीवा के रईस हैं, तोहार लगन (शादी) लाने देख रहे हैं. हफ़्ते भर में अइहैं देखबे को.'

'हम लगन नहीं करेंगे दद्दा ! हम अपना जीवन संगीत को दे दिए हैं. हमें नहीं अरुणा को दिखा दो.'

संगीत के प्रति हमारी लगन और निष्ठा को देखकर शायद दद्दा और अम्मा भी निरुत्तर हो गए थे. बार-बार कहने से भी जब हमने हामी नहीं भरी तो दद्दा ने राजसी शान-बान से वहां अरुणा की लगन आख़िर करवा ही दी. इससे हमारे सर पर से बोझ उतर गया था.

हम अपने आपसे पूछ रहे थे कि क्या हम सच में पुरुष का साथ नहीं चाहते कि नाटक किए हैं? सही अर्थों में तो हम निखिल दा पर मर मिटे थे फिर ऐसा क्यों कहे हम? अपने आपसे भी छल किया है हमने और मां-बाप से भी. ऐसी सोच से हमारे भीतर तक क्षोभ भर गया था. भीतर ही भीतर मूक क्रंदन से अभिशप्त आत्मा बन गयी थी मैं. जिससे चेहरे की मधुरता ख़त्म हो गयी थी और चिंता व्याप्त हो गयी थी. मुझे लग गया था कि मैंने न्यायोचित नहीं किया है. और उन्हीं दिनों कुछ ऐसी अनहोनी घट गयी जिसने जीवन के सारे तारों को झंकृत कर के रख दिया.

हुआ यूं कि अम्मा जो कि दिन भर तख़्त पर बैठी पान की सुपारी कतरती रहती थीं और पान खाती रहती थीं. वही सुपारी उनके गले में अटक गयी थी. उसी पल उनकी पीठ में ढेरों मुक्के मारे गये लेकिन वह गले में अटक कर उनकी जान ही लेकर रही. अनहोनी घटने से पूर्व कभी संकेत कहां देती है? बगल में बैठे दद्दा ने भी सारे जतन करके देख लिये लेकिन मौत का ग्रास बनने से उन्हें कोई नहीं बचा पाया और पल भर में हवेली की ख़ुशियां उजड़ गयीं.

सारे घर में मातम छा गया था.

'भला ऐसे भी कोई जाता है?' सब यही कह रहे थे. दद्दा तो पूरे ही टूट गए थे. सारा दिन दोनों अपने-अपने तख़्त पर बैठकर आमने-सामने एक दूसरे की गतिविधियां देखते, बतियाते रहते थे. सो, दद्दा से अब अकेले बाहर नहीं बैठा जाता था. जैसे ना जीवन में आस, ना खाने पीने में रस, बस चारों ओर सूनापन पसरा था. अफ़सोस करने वालों के अलावा, घर में ख़ास किसी का आना-जाना भी नहीं हो रहा था. निखिल दा भी नहीं आए फिर कभी. क्योंकि अब दद्दा भूल गए थे शायद सब कुछ. अम्मा के जाने के दर्द से संगीत भी बेजान हो गया था. मेरी इच्छाएं अधूरी होकर हलक में अटक गयी थीं. लगता है समझ ने जवाब दे दिया था, रातों की नींद उड़न छू हो गयी थी. ज़रा-सी झपकी आती तो किसी का रूदन सुनाई देता तो मैं चौंककर उठ के बैठ जाती थी. क्या मालूम था यह पूर्वाभास था भविष्य के अनिष्ट का. हां कुछ ही महीने तो हुए थे अम्मा से बिछुड़े हुए कि करुणा चीख़ रही थी, 'दद्दा, दद्दा! दिदीया रे दिदीया देखो तो आकर.'

दद्दा का पार्थिव शरीर पड़ा था. सब कुछ त्याग वे अम्मा के पास चल दिए थे हम सबको छोड़कर. हमारी नैया मझधार में थी और उसके खेवनहार अम्मा-दद्दा चले गए थे. वज्रपात हुआ था हम सब पर. दद्दा के रहते बड़के भैया तो दिन-रात भाभी के संग पड़े रहते थे. घर के कर्ता-धर्ता दद्दा ही थे. यह बिछोह हृदय विदारक था. सब तरफ से सब भागे आ रहे थे और चीख़-पुकार मच गयी थी. राजा के निधन पर प्रजा टूट पड़ी थी. राजन दद्दा पर गिरा पड़ा था. करुणा दद्दा का सिर गोद में रखे, छोड़ने को तैयार नहीं थी और हमें बिफरते देखकर मनोज ने रोते हुए हमें अपनी बाहों में समेट लिया था. वह प्यार से बेतहाशा हमें पलोस रहा था. हम निढाल थे - अर्ध मूर्छित.

घर भर में छाया सुख अब करवट ले रहा था. दुख के साए घर की छत पर मंडरा गए थे. पुराने सुखद दिनों को पल भर को ही लौटा पाऊं, ऐसा कुछ भी तो नहीं था अब वहां. कभी इस घर में गूंजने वाला मधुर संगीत, शोरगुल, हंसी कहकहे, निर्बाध गति से चारों तरफ़ बहने वाला उल्लास, लोगों का आना-जाना, चाय के खाली पिरच-प्यालों का शोर सब के बदले एक लंबा मौन पसरा था.

हां, मुझे महसूस हो रहा था कि मनोज मेरे आस-पास ही मंडराता रहता है. कुछ दिनों से वह कॉलेज़ भी नहीं जा रहा था. यहां तक कि अपने घर न जा कर राजन को ढांढस बंधाने के लिए रात को उसके साथ सो रहता था.

मुझे यूं महसूस होने लगा था जैसे मेरी ओर देखते हुए वह प्यार से मुझे अपनी आंखों में भर लेता है. दद्दा भी अपने काम के लिए उसे आवाज़ लगा देते थे क्योंकि वह घर के सदस्य जैसा हो गया था. अधिकारपूर्वक रसोई घर में भी जीम लेता था. सो, अब स्वाभाविक तौर पर उसकी ओर ध्यान चला जाता था क्योंकि अभी रियाज़ के लिए मैं सोच भी नहीं सकती थी. वक़्त था मेरे पास इधर-उधर देखने और सोचने के लिए.

एक सांझ को हवेली से सरोवर की ओर जो सीढ़ियां नीचे उतर रही थीं, उन पर बैठी मैं सोच रही थी कि क्या दद्दा इतने बंधे थे अम्मा से कि बच्चों के लिए कुछ और देर ठहर नहीं पाए और चले गए उनके पीछे-पीछे. अब हम सब का क्या होगा? राजन तो अभी मेट्रिक भर किए हैं, और बड़के भैया तो सदा से निकम्मे रहे हैं.

दद्दा बुलाते रहते थे, 'बड़के हमारे पास आकर बैठो तनिक, हम तोहार को बहुत कुछ समझाए ख़ातिर बुला रहे हैं.बिटुआ, कब तक लुगाई (पत्नी) के पल्लू में छिपे बैठे रहोगे?'

पर भैया अब पछता रहे हैं कि वे कभी आकर नहीं बैठे थे. क्या मालूम दद्दा किसको क्या-क्या दिए रहे और कौन-कौन मुंह छुपा गया है. इसी झुंझलाहट में मैं सरोवर पार से गाढ़े हो आए धुंधलके को देख, उठकर भीतर संगीत कक्ष में आ गयी थी. विचारों से मेरा दिमाग घूम रहा था और मन थकान से चूर हो रहा था. भीतर आ अपने उपेक्षित हो गए, सितार को छूने भर से आंसुओं का रुका आवेग सारे बांध तोड़

कर बह निकला और मैं अकेली अपने भीतर और बाहर छाए अंधियारे से ग्रसित फफक-फफक कर जोर-जोर से रोने लगी थी कि तभी किसी की बलिष्ठ भुजाओं ने मुझे कस के अपने साथ भींच लिया और मुझ पर प्यार की भीगी बरसात कर दी सहानुभूति में क्योंकि वह भी मेरे दुख में शरीक हो रहा था. यह भैया तो नहीं था क्योंकि आलिंगन का कसाव भिन्न था. कमरे की बत्ती जलाने की सोच ही नहीं थी. अंधेरे में दो नि:श्राण से लिपटे थे हम. ऐसी स्थिति में उपजा प्रेम-ढांढ़स बंधाता हदें लांघ जाता होगा तभी तो उसका अतिक्रमण निर्बाध निर्विघ्न हो रहा था और वह इतना स्वभाविक था कि स्वीकारोक्ति की आवश्यकता ही महसूस नहीं हो रही थी. जीवन के घटनाक्रम इस कदर गुज़र रहे थे कि प्रेम की लालसा निखिल दा के जाने के कारण जो भीतर एक चिंगारी-सी धधक रही थी कहीं वीराने में, वह धधकती ज्वाला बन गयी थी एक लपट का सानिध्य पाकर. उस संगीत के मंदिर में इन दिनों कोई आता-जाता नहीं था. वीरानगी में उस रात प्रेम के दो फूल मर्यादा में खिल गए थे. जहां पवित्र पावन संगीत की स्वर लहरी समाई रहती थी उसी अभीष्ट स्थल पर मैं लंबा मौन धारण किए विचार रही थी कि क्या... मनोज?

नदी के आवेग से प्रभावित धारा प्रवाह ने रास्ता बदल लिया था. सदा चाहत भरी नज़रों से मुझे तकने वाला, खाने के समय मीठी मुस्कुराहट से मेरे हाथ से कुछ भी ले लेना- क्या भीतर ही भीतर उसके मन में पनपता प्रेम था? उम्र की सीमाओं की जिसे परवाह नहीं थी. मुझसे चार-पांच वर्ष छोटा ही होगा लेकिन मेरी दुरूह पीड़ा के क्षणों में उसने मुझे प्रेम-रस से सराबोर कर दिया था. एक चौड़ी छाती रख दी थी उसने मेरे समक्ष सिर रख कर रोने के लिए. उससे कुछ सुन पाने की प्रत्याशा से भरे लंबे मौन के बाद मैंने जब पुकारा, 'मनोज!'

तो वह बुलंद हौसलों से भर उठा और बोला — 'हां बाई, हम हैं ना ! तुम्हें अपनी जान से अधिक प्रेम देंगे. तुम्हें संभालेंगे. सारे जग के समक्ष अपनी बनाएंगे.' उसकी दिलासाएं मेरे सिर के ऊपर से गुज़र रही थीं. वक़्त की नजाकत को समझते हुए उसकी चिंता और कमिटमेंट मेरा दुख-सुख बांटने की इच्छा... सब खोखले शब्द लग रहे थे मुझे. जो अनहोनी घटी थी उसने मेरे अंतर में भीषण तूफ़ान ला दिया था, जिसके थपेड़े असहय हो रहे थे मेरे लिए, जिससे मैं जड़वत् हो गयी थी. मनोज ने मेरा मूक-क्रंदन सुन लिया था शायद! वह बोला — 'ए बाई, कुछ नहीं होगा. हम हैं ना!' और मेरा हाथ थाम लिया था. मैं समझ पा रही थी बड़े घर का बेटा है पर समीकरण एक जैसे नहीं हैं. कितना कुछ है मध्य में? गुंजलक पड़ गयी थी यहां रिश्तों की. संदर्भ बदल गए थे पलों में. हवेली में बहुत लोग आते हैं. सभी अपनी मुंडी घुमाएंगे कहीं भी. हालांकि अब वे बातें नहीं रह गयी थीं कि दद्दा की थाली के संग ढेर सारी थालियां सजती थीं और जो भी बैठक में बैठा है वह जीम रहा है. कसेड़ी (पीतल का मटका) भर के बेल का ठंडा शरबत मैं दिन चढ़े बना देती थी कि धूप में जो भी आए परोस दिया करो. जिगर में ठंड रहेगी इतनी भीषण गर्मी में. महाराजिन अम्मा का बेटा

लघुकथा

सवाल

वीरेंद्र बहादुर सिंह

रमा की पांच साल की बेटी कृष्णा उसके गले में दोनों बांहें डाल कर भेंटते हुए बोली, 'मेरी प्यारी मम्मी.'

इसके बाद वह अपनी मम्मी को चूमने लगी तो रमा ने कहा, 'मेरी प्यारी गुड़िया कहां गयी थी?'

मासूम कृष्णा ख़ुश हो कर बोली, 'मामा के घर गयी थी.'

बिटिया को गोद में उठाते हुए जवाब में रमा ने कहा, 'तो अब तुम्हारे पापा के घर में तुम्हारा स्वागत है.'

'मम्मी यह पापा का घर है और वह मामा का घर है तो मेरा घर कहा है ?' मासूम कृष्णा ने पूछा.

बेटी का यह सवाल सुन कर रमा हतप्रभ रह गयी. क्योंकि बेटी के इस सवाल का जवाब उसके पास तो क्या, शायद दुनिया की किसी भी स्त्री के पास नहीं होगा.

जेड-४३६ए, सेक्टर-१२,
नोएडा-२०१३०१ (उ.प्र.)
मो- ८३६८६८१३३६

कंधे पर गमछा डाले यही काम सारा दिन करता रहता था गर्मियों में और सर्दियों में चाय की सर्विस.

अब वह मायावी संसार ना जाने कहां गुम हो गया था छूमंतर से. अब एक ही चूल्हा जलता है सीधा-साधा कच्चा खाना बनता है. बहुरिया भी चौके में आने लग गयी थी उघड़ा मुंह लिये, दद्दा जो नहीं रहे थे तो कैसा पर्दा.

भैया भी बाहर बैठक में दिखने लगे थे आजकल तख़्त पर बैठे हुए. वक़्त अपनी चाल से आगे बढ़ रहा था. अम्मा और दद्दा को गए एक अरसा बीत गया था. करुणा भी अपने ससुराल चली गयी थी. राजन ने प्रिंटिंग प्रेस का काम खोल लिया था. इस दीर्घ अंतराल के बीच घर का स्वरूप बदल चुका था. अनचीन्ही घटनाएं भी पार्श्व में घट रही थीं. मेरे और मनोज के बीच. वह भी ईंटों के भट्टे और पत्थर की खदानों पर जाने लग गया था अपने बाबूजी के साथ.

रिश्ता करने के दबाव होने पर अपनी मां के आग्रह पर जब उसने बताया कि वह मीराबाई से विवाह करेगा तो वहां एक तूफ़ान आ गया था. मनोज की अम्मा बोली थीं, 'कान्हा और राधा रानी का ब्याह थोड़ी ना हुआ था तब तुम कैसे ब्याह रचाओगे? अरे, हम अपनी बिरादरी में देख लिये हैं तुम्हारे लाने दुल्हनिया. चुपचाप घर पर बैठे रहो और जग की रीत निभाओ.'

वहां उस मारवाड़ी परिवार में इतना हड़कंप मचा कि मनोज के भाई-भाभी, दीदी-जीजा, बाबूजी-अम्मा सभी उसके विरोध में हो गए और बोले, 'अग्रवाल हमारी बिरादरी नहीं है हम अपनी बिरादरी से बेदखल कर दिए जाएंगे.'

तब ऐसा ही चलन था समाज में. और मनोज की ज़िद पर उसके बाबूजी ने उसे अपनी जायदाद से बेदख़ल कर दिया था. मनोज अड़े रहे और घर छोड़कर हमारे घर आ गए थे. भैया के दिमाग तो था ही नहीं सो वे सोचते, विचारते क्या? ख़ास कुछ नहीं बोले, बस यही समझाते रहे अपना भला-बुरा सोच लो तुम दोनों. मनोज में मर्दों-सी परिपक्वता आ गयी थी, टस से मस नहीं हो रहे थे. मैं तो अपने सितार के संग एकाकी जीवन जीने लग गयी थी.

मेरे जीवन की यही तो एक उपलब्धि थी. एक दिन मनोज मुझे समझाते हुए आवेग में बोले, 'तुम अपने को छलावा मत दो बाई. मीराबाई का चोला उतार फेंको. यह झूठे मस्तूल हैं, इनसे बेड़ा पार नहीं होगा. अपने खोल को उतार कर बाहर निकलो 'शैल' से. तुम्हें भी जीने का हक़ है. हम थामते हैं तुम्हारा हाथ.'

मनोज की दृष्टि में आवाहन था. एक हामी भरे उत्तर की आकांक्षा मुझसे अपेक्षित थी. मेरी स्वीकारोक्ति.

मैं सब जानते-समझते और चाहते हुए भी अंतर्मुखी बनकर असमंजस के भंवर जाल में डूबने उतराने लगती हूं. मेरा अतीत ध्वनित-प्रतिध्वनित होने लगता है. फलस्वरूप मेरे सितार पर झाला और शहनाइयों की मीठी धुन बजने लगती है. एक सुख भरे संसार और एक जीवन साथी के संग की कामना भी सपनों का संसार सजाने लगती है.

जिसमें पुरुष की उपस्थिति का एहसास तो होगा. ऐसे ढेरों उतार-चढ़ाव पिछले दिनों देखकर मैंने भैया के सामने हामी भर दी और कुछ विकल्प भी तो नहीं था मेरे पास. मैं घर में किसके सहारे रुकती? घर की दीवारें स्वयं बेसहारा हो मुझे ताक रही थीं. अम्मा और दद्दा बिन राजन भी अकेला पड़ गया था लेकिन वह सदा मेरे साथ था.

मेरा हाथ दबा कर बैठा था बोला, 'दिदिया, तुम जो भी करोगी हम तुम्हारे साथ सर्वदा हैं.' डूबते को तिनके का सहारा मिलने से मुझ में आत्मबल आ गया था. अधखुली आंखों से जो सपने देखे थे उनके पूरे होने की उम्मीद भी थी, फिर भी मैंने मनोज से आख़िरी बार पूछा, 'सहानुभूति में भीगकर, तो तुम यह क़दम नहीं उठा रहे? क्योंकि जब इस दया भाव का नशा उतरेगा तो कहीं तुम्हें पछतावा ना हो. सोच लो आराम से.'

मेरे मन के कोने का डर यह पूछने को मज़बूर था. इस पर मनोज ने मेरे दोनों हाथों को पकड़ लिया और मेरी आंखों में आंखें डाल कर एक आश्वासन,एक विश्वास और प्यार भरी दृष्टि से मुझे सराबोर करते हुए वही शब्द दोहराए, 'हम कह रहे हैं ना कि हम हैं...'

मेरी अवचेतना में शहनाइयां गूंज उठीं.

४६९ आर, मॉडल टाउन,
जालंधर-१४४००३.
फोन :९६८२६३९६३१

लेटर-बॉक्स (पृष्ठ ५ से आगे ...)

पसंद है क्योंकि यह यथार्थ पर आधारित है. कई बार मेरी भी इच्छा होती है कि मैं भी अपनी आप-बीती लिखूं...'कथाबिंब' के उज्जवल भविष्य के लिए ईश्वर से प्रार्थना है.

– हरिश्चंद्र दास
सिद्धि गणेश, प्लॉट ८५७, सेक्टर-८,
चारकोप, कांदिवली (प.) मुंबई-४०००६७
मो.९३२२१८२६२७

▸▸ 'कथाबिंब' का नया अंक मिला, धन्यवाद. सारी कहानियां पढ़ गया हूं. कमोबेश सभी अच्छी हैं खासतौर पर 'चल मेरे चेतक' काफ़ी अच्छी लगी. विशेषकर आपका संपादकीय हर बार की तरह बहुत अच्छा लगा. इस बार भी देश की चिंताओं पर आपने गहरी टिप्पणी की है. टी.वी. चैनलों पर आपका कथन, 'टी.आर.पी. के चक्कर में सुबह से शाम तक छोटे-छोटे अर्थहीन मुद्दों को उछालते रहते हैं.' यह सच है. यहां तक कि एंकर और संवाददाताओं को यह नहीं बताया जाता कि न्यूज़ कैसे पढ़ी जाती है या टी.वी. पर कैसे बोला जाता है. जोर-जोर से बोल कर खाली उत्तेजना फैलाते हैं लिहाजा लोगों को टी.वी. बंद कर देना पड़ता है. इनमें से एक-दो चैनल ही ऐसे हैं जो ठीक तरीक़े से बातों को सामने रखते हैं.

सीरियलों की हालत तो और भी बदतर है. भद्दे कथानकों के कारण जाने-अनजाने दिमाग में नकारात्मकता आने लगती है. एक वक़्त था जब 'हम लोग', 'नुक्कड़' जैसे सीरियल लोग चाव से देखते थे. नाटकीय और असंगत कथानकों की भरमार है जो उचित नहीं है. एक गोष्ठी में सोवियत लैंड पुरस्कार से सम्मानित कथाकार डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह ने कहा था 'देश बड़े कठिन दौर से गुज़र रहा है, जहां अभिव्यक्ति की आज़ादी पर ख़तरा मंडरा रहा है'...इससे इनकार नहीं किया जा सकता,

'कथाबिंब' के कुछ पुराने अंक नि:शुल्क उपलब्ध हैं. इच्छुक व्यक्ति 'कथाबिंब' की ई-मेल पर संपर्क करें.
- संपादक

बहरहाल 'कथाबिंब' के निरंतर प्रकाशन और विचारों की प्रखरता की आकांक्षा रखता हूं.

– सिद्धेश
१/१७, आदर्श पल्ली,
आशा अपार्टमेंट, पो. रीज़ेंट एस्टेट,
कोलकाता-७०००९२.
मो. : ९८३०८५९६६०

▸▸ बहुत प्रतीक्षा के बाद 'कथाबिंब' का जन-जून २०२२ का अंक मिला कृपया इतनी अधिक देरी न किया करें. पत्रिका त्रैमासिक है उसे त्रैमासिक ही रहने दें. अत्यधिक विलंब से पत्रिका का सम्मान घटता है लेखक-पाठक भी हतोत्साहित हो जाते हैं. खैर सबसे पहले संपादकीय पढ़ता हूं. कथाओं के परिचय के बाद आप जो संपादकीय विचार प्रकट करते हैं वे अत्यंत मूल्यवान होते हैं. उसका विस्तार करें तो ठीक होगा.

अधिकतर कथाएं पढ़ीं. सबसे अधिक पसंद आयी अखिलेश श्रीवास्तव चमन की कहानी 'तितलियां और तितलियां' कई बार पढ़ी, यह याद रह जाने वाली कथा है. 'हरा समंदर' कमज़ोर ढंग से लिखी लंबी अच्छी कथा है. 'मन की ज़मीन' भी सुंदर कहानी है. अनेक कहानियों में बहुत से अंग्रेज़ी शब्द अनावश्यक आ गए हैं. वैसी ही कहानी है, 'परदा रीलोडेड' इसमें व्यर्थ में बहुत अधिक अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग किया गया है वैसे कहानी आज के संदर्भ में अच्छी है. 'गांधी का स्वप्न भंग' बढ़िया फैंटेसी है. 'नहीं मुझे शहर नहीं जाना है' भी याद रह जाने वाली अच्छी कहानी है.

'मैं सिंधुताई सपकाल' ने बहुत प्रभावित किया. रूप सिंह चंदेल की 'एक टुकड़ा ज़िंदगी' उपन्यास की समीक्षा पढ़ी. उपन्यास न पढ़ पाने का खेद रहा. बहुत सुंदर कथ्य और प्रभावशाली लेखन प्रतीत होता है. समीक्षा के अंतिम भाग में श्री चंदेल ने बहुत अच्छा सवाल प्रस्तुत किया है जो विचारणीय है उन्हें धन्यवाद. पुन:, आपकी और मंजुश्री जी की सतत साधना और कठिन परिश्रम का हिंदी कथा जगत आभारी रहेगा ऐसे कठिन समय में भी पत्रिका का प्रकाशन खेल नहीं है.

– चंद्रमोहन प्रधान,
आमगोला, मुजफ्फरपुर-८४२००२.
मो.८७५७०९०७५१

जन्म : ०८ जून १९५१ उदयपुर, राज.
शिक्षा : परास्नातक (संस्कृत साहित्य)

उस सुबह की चाय

आशागंगा प्रमोद शिरढोणकर

'कल्याणी ?'

'जी !'

'गीज़र चालू कर दिया था न?' दिनकर शेव करते-करते चिल्लाया.

'और कपड़े निकाल कर रख दिए...ओह...' बोलने की वजह से दिनकर को ब्लेड का कट लग गया.

कितनी मर्तबा कल्याणी उसे कह चुकी है कि दाढ़ी बनाते समय मत बोला करो, बिना कहे-पूछे भी उसके काम समय पर होते ही हैं. यह बात वह अच्छी तरह जानता है, पर देर से उठने की वजह से सब कुछ हबड़-तबड़ में करने की उसकी आदत बन गयी है.

ब्रश, मग, रेज़र, सब वाशबेसिन पर छोड़ उसने सोनू को आवाज़ दी, सोनू अपने स्कूल के होमवर्क में तल्लीन था, पर पिता की गुहार पर दौड़ता आया.

'जूतों पर पॉलिश कर दी?' जल्दी-जल्दी में दिनकर ने टॉवल कंधे पर रखते हुए पूछा.

'अभी किए देता हूं.' सोनू की सहमी हुई आवाज़ निकली.

दिनकर उबल उठा, 'अभी कर देता हूं... अभी कर देती हूं. सब काम याद दिलाने पड़ते हैं. यह नहीं होता कि गर्म पानी ख़ुद ही समय पर रख दें, पॉलिश बिना कहे कर दें, परेशान कर रखा है, दोनों ने.'

इतने में कल्याणी ने खाने की मेज़ पर नाश्ते के लिए बर्तन भी रख दिए. आख़िरी परांठा उतारने के एकदम बाद उसने दिनकर के कपड़े निकालकर पलंग पर रख दिए थे. यदि दिनकर पलंग पर पहले से

आशागंगा प्रमोद शिरढोणकर

मातृभाषा/अन्य : सिंधी-हिंदी-मराठी-संस्कृत-अंग्रेज़ी, १५ वर्ष वय में १९६६ से लेखन प्रारंभ.

विधा : कविता, कहानी, लघुकथा, व्यंग्य, संस्मरण, आलेख. प्रकाशित पुस्तकें : अ.भा. २१ गद्य-पद्य संकलन

प्रकाशन : अनुस्वार, आलोक पर्व, शुभ तारिका, अक्षरा, क्षितिज, कल्याण, दृष्टि, लघुकथा कलश,

लघुकथा वृत्त, मधुमती, साहित्य अमृत, मधुरिमा, नायिका, अविराम साहित्यिकी, नारी अस्मिता, शब्द प्रवाह,

शाश्वत सृजन, मानस वंदन, मानस स्तंभ, माधुरी, मृग मरीचिका, प्रोत्साहन, अध्यात्मसंदेश, युवक धारा,

गुरू और ज्ञान, जगमग दीप ज्योति, त्रै. यशधारा, सिंधु महक, दै. अग्निपथ, गर्दभराग, सिंधू केसरी, सिंधू

यादगार, सिंधू मशाल, श्रीरामपत्रिका (डीसीएम श्रीराम केमीकल एंड फर्टिलाइजर की गृहपत्रिका में सतत ११से वर्ष रचनाएं प्रकाशित)

एकलव्य प्र. औरंगाबाद (महा.) में सहायक संपादक हिंदी; इसी में प्रूफ़ चैकिंग का ४ वर्ष अनुभव; नौ काव्य-गद्य पुस्तकों का संपादन व प्रूफ़ चैकिंग; आकाशवाणी इंदौर पर काव्यपाठ ; काव्य सम्मेलनों/गोष्ठियों में रचना पाठ; अनुवाद : सिंधी से हिंदी / हिंदी से सिंधी में; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा उज्जैन में आयोजित पुस्तक मेले में लघुकथाओं का पाठ.

विशेष रुचि : लेखन, पठन, अभिनय, शुद्ध हिंदी लेखन,रेडियो श्रवण, वरिष्ठ महिला नागरिकों से संभाषण का सामाजिक सरोकार

संप्राप्ति : भगवतीचरण वर्मा सारस्वत सम्मान २०२१: गोरक्षशक्ति धाम सेवार्ध फाउंडेशन, इंदौर:; डॉ. महाराज कृष्ण जैन स्मृति सम्मान २०१७: पूर्वोत्तर हिंदी अकादेमी शिलांग,मेघालय; दै. अग्निपथ वरिष्ठ साहित्यकार एवं कवयित्री सम्मान २०१४; शब्द प्रवाह साहित्यकार सम्मान २०१३

संप्रति : स्वतंत्र लेखन एवं भारतीय जीवन बीमा निगम उज्जैन में अभिकर्ता.

निकालकर रखे कपड़े देख लेता तो उनके विषय में पूछने की ज़रूरत नहीं पड़ती, न ही ब्लेड का कट लगता.

कल्याणी सोचने लगी, कितनी परेड हो जाती है सुबह-सुबह. यह सब करते साढ़े-नौ बज जाते हैं, फिर आधे-घंटे में ख़ुद नहाना-धोना, नाश्ता करना और दफ़्तर के लिए निकलना, कभी नाश्ता गटक लेती है, कभी लंच बॉक्स में धरकर ले जाना पड़ता है.

पहले ऐसा नहीं था, पर नौकरी के बाद वह जैसे एक मशीन होकर रह गयी है. सुबह-सवेरे दिनकर के हुक्म, घर के काम, चाय-नाश्ता, रसोई, टिफ़िन, सफ़ाई, कपड़े, सोनू की तैयारी. कितना कुछ करना होता है सुबह पांच से नौ के बीच. दिनकर और सोनू के निकलने के बाद उनके द्वारा फैलाए सामान समेटने में ही आधा घंटा निकल जाता है और शेष बचता है, आधा घंटा ख़ुद के लिए.

दिनकर और सोनू के निकल जाने के बाद घर में अजीब-सा सन्नाटा पसर जाता है. कल्याणी ने जल्दी-जल्दी चाय पीने के बाद बर्तन सिंक में डाले और बाथरूम में घुस गयी. गीज़र में गर्म पानी बहुत कम बचा था. ठंडे पानी से नहाने से कंपकंपी छूट आयी थी.

नाश्ता करने का समय नहीं बचा था. जल्दी-जल्दी परांठा लंच बॉक्स में भर पर्स में डाला और दस बजते-बजते बाहर निकल आयी.

रास्ते भर उसका दिमाग़ भन्नाता रहा. कितनी भी जल्दी-जल्दी क्यों न करे, वह निपट ही नहीं पाती. कम समय में उसे बीसियों काम पूरे करने होते हैं. पैरों में चाहे स्केटिंग नहीं, पर बिना उसके भी वह चकरघिन्नी-सी घूमती फिरती है घर में, बाहर में, इधर से उधर.

सोनू चाहे कुछ बड़ा हो गया, पर दिनकर का क्या करे, उसके सारे काम उसे स्वयं ही करने होते हैं, सोनू की तरह. सब कुछ यदि उन्हें बना-बनाया और तैयार न मिले तो जैसे खाने को दौड़ पड़ते हैं.

अगर ख़ुद ही अलमारी से कपड़े निकाल लें, गीज़र ऑन कर दें, जूतों को पॉलिश रात में ही करके रख दें तो इतनी धांय-धांय तो न मचे. यहां तो कोट भी उसे ही हैंगर में लटकाना होता है. स्वेटर तह कर रखने की ज़िम्मेदारी भी उसी की है. रुमाल, मोजे ड्रावर में हमेशा तैयार रहें इस बात

का ध्यान तो हमेशा रहता है. और तो और ऑफ़िस जाते वक़्त पर्स में पर्याप्त रुपये और घर की डुप्लीकेट चाबी है या नहीं, यह सब संभालना भी कल्याणी का काम है.

अचानक एक झटका खाकर बस रुकी. उसका बस स्टॉप आ गया था. सुबह की घरेलू फ्रंट के बाद अब उसे दफ़्तर की फ्रंट संभालनी थी.

दिन भर दफ़्तरी राजनीतिक कुचक्र और परस्पर एक-दूसरे को नीचा दिखाने की जालसाजियों से छूट कर वह एक मेमने की तरह घर की ओर लपकती. सोनू या तो मैदान में खेलता मिलता या रसोई में खाने को कुछ ढूंढ़ता हुआ. श्रीमान दिनकर महोदय हाथ-मुंह धो हीटर के पास अख़बार या कोई पत्रिका पढ़ते होते.

उसे अक्सर लगता, क्या वह चाय या कॉफी का एक प्याला पाने की भी वह हक़दार नहीं है? घर के सामने ही पांच नंबर में रहने वाले दीवान दंपति में आपस में कितना सामंजस्य है. दोनों का घर लौटने का समय लगभग एक ही है. कभी श्रीमती दीवान दो-पांच मिनट पहले घर पहुंचती हैं तो कभी-कभी दीवान साहब. पर यह तय है कि जो भी पहले घर पहुंचेगा, वही चाय बनाएगा, क्योंकि बाद में पहुंचनेवाला ज़्यादा थका हुआ होता है.

एक दिन दोनों पति-पत्नी दो विभिन्न दिशाओं से आते हुए गली में मिल गये. हंसते-हंसते घर का ताला खोलने तक यह निश्चित हो चुका था कि श्रीमान दीवान चाय गैस पर चढ़ा देंगे और श्रीमती जी तब तक साड़ी बदल हाथ-मुंह धो लेंगी. उसके बाद रसोई में घुसकर वह जब तक चाय तैयार कर लेंगी, तब तक श्रीमान जी हाथ-मुंह धो लेंगे. ऐसी मज़ेदार घटनाएं वह गाहे-बगाहे कल्याणी को सुना जाती हैं.

आजकल स्त्रियों पर काम का कितना बोझ हो गया है... घर के काम, फिर नौकरी, फिर घर के काम. कहीं कोई विराम नहीं है, विश्राम नहीं है. अपने शरीर, अपनी तबीयत की सुध नहीं है. रात के ग्यारह बज चुके होते हैं. उस समय झट-से पसरकर आंख मूंद लेने की चाह होती है.

वह फिक् से हंस दी. दिनकर पत्रिका पढ़ते-पढ़ते चौंक उठा, 'क्या हुआ? क्या कोई चुटकुला याद आ गया?'

'नहीं...' कल्याणी हंसते-हंसते पलंग पर बैठकर बोली.

'तो?' दिनकर अभी तक आश्चर्य-से उसकी ओर देखे जा रहा था.

जो मैं अभी सोच रही थी, वह हर कहानी हर पत्र-पत्रिका में पढ़ने को मिलता है.

अब कल्याणी का हंसना थम चुका था.

'क्या सोच रही थीं? क्या पढ़ने को मिल रहा है?' और कल्याणी ने बेझिझक अपने सोच-विचार दिनकर के सामने रख दिए. कॉलेज़ की गृहविज्ञान परिषद की अध्यक्षा गार्गी राजाध्यक्ष एक दिन ऑफ़िस में आयी थीं और उसके विचारों को जानने के लिए कई प्रश्न भी किए थे. वे शायद कोई परिचर्चा आयोजित करना चाह रही थीं. दूसरे दिन घर पर एक छात्रा को भेज उन्होंने मेरा फ़ोटो भी मंगवा लिया था. यह मैं आपको बताना ही भूल गयी. आपसे फ़ुर्सत में बैठ बातें करने का जैसे मौक़ा ही नहीं मिलता. सच!'

और कल्याणी ने देखा, सब कुछ सुनकर दिनकर ने पत्रिका एक ओर धर दी और छत की ओर देखता हुआ एकटक कुछ सोचने लगा. कल्याणी ने सोचा उसकी बेबाक हंसी और उसके कारण की व्याख्या से पति के अध्ययन में बाधा पड़ जाने से वह अनमने हो उठे हैं. उसने उल्टी पड़ी पत्रिका दिवाकर की ओर बढ़ा दी, 'पढ़ोगे नहीं?'

'नहीं.' दिवाकर उदास था और अब एकटक कल्याणी की ओर देखे जा रहा था, 'अब सोना चाहिए.'

'अच्छा हुआ. आप भी सोना चाहते हैं. मैं बहुत थक गयी हूं और तेज़ नींद आ रही है. उजाले में नींद नहीं आती जल्दी.' कहकर कल्याणी ने पत्रिका बंद कर साइड–रैक पर रख दी और साइड लैंप जलाकर ट्यूबलाइट बंद कर दी.

दिनकर ने देखा, कल्याणी लेटते ही गहरी नींद में चली गयी है, पर तनाव का खिंचाव-सा उसके चेहरे पर झलक रहा है. वह सोयी तो है, पर निश्चिंत होकर नहीं, मानो दिमाग़ से भी उसके घर के कामों का बोझ उतरा न हो और केवल नींद से आंखें बोझिल हो जाने की वजह से उसे जबरन सोना पड़ा हो.

यदि नींद से उसकी आंखें झपकने न लगतीं तो शायद अभी कुछ देर और वह काम करती या सोनू की यूनीफ़ॉर्म को प्रेस या धुले कपड़े, जो आंगन की रस्सी पर लटक रहे हैं, उन्हें तह कर अलमारी में जमा रही होती.

सच ! कल्याणी को कितने काम करने होते हैं? वह ख़ुद दफ़्तर में जितनी देर काम करता है, कल्याणी भी तो उतना ही वक़्त दफ़्तर में काम करती है. थककर चूर हो जाती है, पर धैर्य-से जुटी रहती है. अभी भी वह कह तो सकती थी लाइट बंद करने को, पर नहीं कहा. सोनू और वह ख़ुद उसके श्वास-उच्छवास हैं. हम दोनों के लिए जीना ही उसकी ज़िंदगी है. दिनकर कल्याणी के बालों को सहलाते-सहलाते लगातार सोचने लगा.

इतनी बिज़ी हो गयी है हम दोनों की देखरेख में कि अपने शरीर की सुध लेने का समय भी उसके पास नहीं बचता और वह है कि ऐसी सद्गृहिणी की कद्र नहीं करता. इतनी निर्दयता से भला अपनी पत्नी को कोई ट्रीट करता है. उसे यह सब सोच-सोचकर कोफ़्त होने लगी, अपने आप पर, अपने पढ़े-लिखे अफ़सर होने पर.

जिस वक़्त कल्याणी हंसते हुए कमरे में आयी, वह पत्रिका में गार्गी राजाध्यक्ष की परिचर्चा पढ़ रहा था. उसे परिचर्चाएं एक व्यर्थ की बकवास और पत्रिकाओं के पृष्ठ जाया करने के अलावा और कुछ नहीं लगा था, पर अचानक कल्याणी का फ़ोटो देखकर उसने पढ़ना शुरू किया था. कल्याणी के विचारों को वह आठ सालों में जान नहीं पाया था या यों कहें कि जानने की कोशिश नहीं की थी, पर 'कामकाजी महिलाएं और नौकरी शुदा पति' शीर्षक से जिन भी महिलाओं ने भाग लेकर अभिव्यक्तियां दी थीं, उन्होंने दिवाकर की आंखें खोल दी थीं.

दिनकर ने कल्याणी की तनाव की रेखाओं को सहलाकर मिटा दिया. अचानक उसको महसूस हुआ मानो कल्याणी का चेहरा एक निश्चिंत मुस्कान से दीप्त हो रहा है, तनाव का कहीं नामोनिशान नहीं था.

कल उसके विवाह की वर्षगांठ है. उसे पता था, पति-पत्नी एक-दूसरे को 'सरप्राइज़ गिफ़्ट' देने के चक्कर में महीनों सोच-विचार में गुज़ार देते हैं. दिनकर भी कुछ सोचता, विचारता नींद में जाने कब लुढ़क गया. सुबह पांच बजे अलार्म बजने की आवाज़ पर उसने अलसायी-सी आंखें खोलीं. चुपके-से देखा, कल्याणी उठी, स्वेटर डाला और कमरे के बाहर चली गयी.

दिनकर को पता था, कल्याणी निपटने और ब्रश करने के बाद चाय बनाती है, क्योंकि उसके बाद वह अपने सुबह के कामों में जुट जाती है.

दिनकर उठा. रजाई तह कर अपनी जगह रखी. पलंग की चादर और तकिए ठीक किए, चींटियों भरा खाली दूध का गिलास हाथ में थाम वह रसोईघर में घुस गया. गैस पर एक तरफ दूध तो दूसरी तरफ़ चाय का पानी चढ़ाकर किचन में ही उसने मुंह धोया. गमले से शेवंती का एक गुच्छा तोड़ ट्रे में रखा. दो कप चाय व एक गिलास दूध लेकर वह चुपके-से कमरे में आ गया.

अब कल्याणी के ब्रश करने की आवाज़ उसे सुनाई दे रही थी. वह उसकी हर पदचाप की आहट लेने लगा. अब कल्याणी रसोईघर में घुसी. 'आह...' कल्याणी चिल्लायी.

'क्या हुआ कल्याणी?' दिनकर अनायास पूछ बैठा.

कल्याणी... कल्याणी... अपना ही नाम दोहराकर बुदबुदाई. गरम दूध की पतीली-से जलती हुई अंगुलियों की जलन वह भूल गयी. दिनकर की आवाज़ और इतनी सुबह-सुबेरे. वह आश्चर्य और कुतूहल से धीरे-धीरे कमरे में आयी. दरवाज़े के पास ही मुस्कुराते दिवाकर के हाथों में सजी ट्रे थी और था शेवंती का महकता हुआ गुच्छ. फूलों के बीच एक कार्ड पर स्केच पेन से लिखा था — 'कहीं आज आपकी शादी की सालगिरह तो नहीं ?'

कल्याणी के नेत्र ख़ुशी से झरने लगे. उसके चेहरे पर मुस्कान थी, ऐसी मुस्कान जो एकदम शादी के बाद के दिनों में दिनकर ने उसके चेहरे पर देखी थी.

और कल्याणी... उसकी दशा तो वैसी थी, जैसी 'कुमार संभव' की पार्वती की...'न ययौ न तस्थौ.' न वह वहां से जा पा रही थी, न रुक पा रही थी, न रो पा रही थी, न हंस पा रही थी. उसके हाथ पति के हाथों से ट्रे लेने को बढ़े, पर ये क्या? दिनकर ने न ट्रे छोड़ी, न कल्याणी की अंगुलियां.

आज सुबह की चाय थामें उन दो जोड़ी हाथों ने दो जोड़ी आंखों से उसे सरप्राइज़ गिफ़्ट मिल गया.

'श्री प्रमोद स्थान', ५६९-बी,
सेठी नगर, उज्जैन-४५६०१०(म. प्र.)
मो. : ९४०६८८६६११
ई-मेल : agpshirdhonkar@gmail.com

ना-मुराद

ज्योति जैन

२१ अगस्त १९६४, मंदसौर (म.प्र.)
शिक्षा - स्नातक

कमल घाटी के बीच बने शानदार फ़ार्म हाउस के बाहर एक शानदार कार आकर रुकी. ड्राइवर ने गेट खोला. लंबी चौड़ी देहयष्टि का मालिक उसमें से उतरा और फ़ार्म हाउस को ओवरलैप करती रंगबिरंगे फूलों से सजी साइकिल की एक छोटी-सी गुमटी उसकी आंखों के सामने आ गयी. उसकी ओर बढ़ते उसके क़दम कमल के फूलों से भरी झील की ओर उठ गए.

यही तो वह झील थी जिसने उसके जीवन का एक नया अध्याय लिखा था. यही तो वह झील थी जिसने उसे एक परिवार दिया था. यही वह झील थी जिसके कारण आज वह दो बच्चों का पिता था और आज वे दोनों बच्चे विदेश से लौट रहे थे उसके पास... हमेशा के लिए... और इसीलिए उसने तय किया था कि इस नए जीवन की शुरुआत भी इसी जगह से हो, सो बच्चे एयरपोर्ट से सीधे यहीं आने वाले हैं.

झील की ओर बढ़ते-बढ़ते आंसुओं से भरी आंखें धुंधला गयीं और उसे वह बच्चा नज़र आया जो गाड़ी में से आधा धड़ बाहर निकालकर चिल्ला रहा था.

वह बरसों पीछे जा चुका था.

मम्मी.... पापा... वह देखो..कितने सारे कमल...! और सुशांत सिर और आधा धड़ बाहर निकालकर ख़ुशी से कार की खिड़की से उचक-उचककर बाहर झांकने की कोशिश करने लगा. और देखो पापा... कितनी सुंदर फूलों की साइकिलें...! वह इतनी ज़ोर से चिल्ला रहा था कि साइकिलों के पास खड़ा लड़का भी उसे देखने लगा.

ज्योति जैन

लेखन : अहा! जिंदगी, फेमिना, विभोम स्वर, समार्तन, कथाबिंब, रविवार आदि पत्रिकाओं और समाचार पत्रों में सतत लेखन.
उपन्यास : पार्थ... तुम्हें जीना होगा, आलेख संग्रह : जीवन दृष्टि
कहानी संग्रह : भोरवेला, सेतु व अन्य कहानियां और नज़रबट्टू;
कविता संग्रह : मेरे हिस्से का आकाश, मां-बेटी एवं जेब में भरकर सपने सारे, चुस्कियां;
यात्रा वृत्त : यात्राओं का इंद्रधनुष.

अनुवाद : *गुजराती, मराठी, पंजाबी एवं तेलुगु में रचनाओं के अनुवाद. लघुकथा संग्रह का मराठी, बांग्ला एवं अंग्रेज़ी में अनुवाद. कहानी संग्रह - सेतु व कविता संग्रह मां-बेटी का अनुवाद.*

विशेष : *आकाशवाणी से वार्ताओं का प्रसारण, लघुकथाकार श्रृंखला पड़ाव और पड़ताल में लघुकथाएं शामिल, विश्व हिंदी लघुकथाकार कोश में शामिल, लघुकथाएं महाराष्ट्र स्टेट स्कूल बोर्ड एवं पुणे विश्वविद्यालय के बी.ए. के पाठ्यक्रम में शामिल, यूजीसी द्वारा मुंबई व पुणे में आयोजित सेमिनार में प्रपत्र प्रस्तुत. शोध : पुणे कॉलेज, हिंदी विभागाध्यक्ष द्वारा लघुकथाओं पर शोधपत्र, महाराष्ट्र में विद्यार्थियों द्वारा ज्योति जैन के साहित्य में जीवन मूल्य व ज्योति जैन के समग्र साहित्य का अनुशीलन विषय पर पी.एचडी.*

अनेक पुरस्कारों व सम्मानों से अलंकृत : *विशेष : २०१९: ढीगरा फाउण्डेशन अमेरिका व शिवना प्रकाशन द्वारा अंतरराष्ट्रीय शिवना कृति सम्मान, सलिला साहित्य रत्न सम्मान (राजस्थान); २०२१: म.प्र. साहित्य एकादमी द्वारा अ.भा.प्रो. विष्णुकांत शास्त्री सम्मान; २०२२ : हिंदी सेवी सम्मान*

अन्य : पारंपरिक मांडना कलाकार, प्रतिष्ठित साहित्य संगठनों की सदस्य, आदिवासी अंचलों में जल संवर्धन की गतिविधियों में सक्रिय सहभाग.

संप्रति : *इंदौर स्थित डिजाइन, मीडिया व मैनेजमेंट महाविद्यालय में अतिथि व्याख्याता.*

उस रविवार सुकेशजी अपनी पत्नी राधा और बेटे सुशांत को लेकर उस प्रसिद्ध फूलों की झील के आसपास के क्षेत्र में पिकनिक मनाने आए थे. उद्योगपति सुकेश जी एक समाजसेवी भी थे. जब भी जहां भी आवश्यकता होती वह मदद को तत्पर रहते थे. ईश्वर ने धन के साथ-साथ उसे ख़र्च करने का बड़ा मन भी उन्हें दिया था. उस दिन भी नियति ने उनके हाथों ऐसा ही कुछ सुकर्म करना निश्चित किया था. सब कुछ गेस्ट हाउस में सेटिंग कर वे तीनों बाहर आकर झील की ओर जाने लगे... सुशांत बहुत उत्सुक था... 'पापा...! हम झील में जाकर क्या करेंगे..?'

'बेटा... बाक़ी तो नहीं पता... पर तेरी कवियित्री मम्मी ज़रूर कविता लिखेगी..! क्यों राधा...?' उन्होंने हंसते हुए कहा...

राधा भी हंस दी... सच था... उसके कवि हृदय में शब्द मचलने लगे थे.

उनकी नज़र फिर फूलों से सजी ४-५ साइकिलों पर पड़ी. बहुत सुंदर और आकर्षित साइकिलें थीं. कुछ लोग उन पर बैठकर फ़ोटो खिंचवा रहे थे और फ़ोटो खिंचवाने का क़िराया भी दे रहे थे.

दरअसल पर्यटन का यह हिस्सा उनकी रोज़ी-रोटी का साधन भी था. सुशांत झील की ओर भागते-भागते रुक गया और एक साइकिल के क़रीब गया. साइकिल के पास एक आदमी और एक लगभग सुशांत का हमउम्र लड़का खड़ा था. सुशांत साइकिल के क़रीब जाने लगा तभी किसी बात को लेकर उस आदमी ने उस लड़के को दो तमाचे जड़ दिए थे. लड़का 'बापू.....' कहकर कराह उठा. सुशांत सहमकर रुक गया. तब तक उसके पीछे-पीछे आ रहे सुकेशजी ने एकदम उस आदमी को थोड़ा नाराज़गी से टोका... 'क्या कर रहे हो भई...? क्यों मार रहे हो बच्चे को...?'

'अरे साहब... यह नामुराद है... राम जाने क्यों यह मुसीबत मेरे गले पड़ी है? काम एक धेले का नहीं आता... किसी काम में मन नहीं लगता. बस दिनभर खाने को दे दो.

सुकेश जी को बुरा लगा और इस बात से और ज़्यादा बुरा लगा कि सुशांत पर इसका बुरा असर दिख रहा था. वह सहमा हुआ था. उन्होंने ध्यान भटकाने के लिए ..'चलो चलो बेटा.... साइकिल पर बैठकर फ़ोटो खिंचवाते हैं. कहकर सुशांत को दोनों बाहों से उठाकर साइकिल की सीट पर बैठा दिया और मोबाइल से मां-बेटे की तस्वीर उतारने लगे. फिर

बारी-बारी सबने अलग-अलग तस्वीरें खिंचवाई. क़िराया देते समय सुकेशजी ने ध्यान से देखा ....बच्चा कुछ अजीब–सा लग रहा था. उन्होंने देखा, बच्चे के मुलायम गालों पर उंगलियों के निशान थे और मासूम चेहरे पर कुछ उदासी व शर्म मिश्रित क्रोध. सुकेशजी को यह बिल्कुल अच्छा नहीं लगा. उन्होंने उसे सहज करने के लिए उसे पुचकारते हुए पूछा '...क्या नाम है बेटा तुम्हारा...?'

'नामुराद... नामुराद ...नाम है!' आदमी ने आगे बढ़कर कहा और उसे फिर एक धौल जमा दी. तभी भीतर से एक औरत आयी जो उस बच्चे की मां ही लग रही थी. सुकेशजी को लगा अब बच्चे को कुछ दुलार मिल जाएगा, लेकिन वह यह देखकर आश्चर्य चकित रह गए कि वह स्त्री भी उस बच्चे को ही कोस रही थी.

'किसी का नाम नामुराद कैसे हो सकता है. वे सोचते हुए उस आदमी को साइकिल का क़िराया दे रहे थे और उन्होंने बच्चे से फिर पूछा — 'क्या पढ़ते हो बेटा... स्कूल जाते हो...?'

तभी माता-पिता का कोसना फिर शुरू हो गया — 'यह ना पढ़ता है, ना पढ़ती है... ना जाता है, ना जाती है... और उससे लगभग दचकते हुए उन्होंने कहा — 'न जाने किस बात की सज़ा ऊपरवाले ने हमें दी है इसे पैदा करके... कमबख़्त बेटा ना देता, बेटी ही दे देता. मगर यह नामुराद.' ऊपर से इसकी बिरादरीवाले भी कमबख़्त... इस गांव में झांकने तक नही आते.'

और उस निर्दोष मासूम को फिर एक धौल पड़ी.

'ओफ्-फोह... सुकेशजी सारा माजरा समझ चुके थे. वह यदि नर या नारी नहीं है तो इसमें उस बेचारे का क्या दोष था. वह थोड़े से विचलित हुए, तभी सुशांत ने उन्हें लगभग खींचते हुए झील की ओर मुंह घुमा दिया वे और राधा उसके साथ खींचते हुए ढलान की ओर चल दिए. दो दिन हो चुके थे पिकनिक से लौटे... पर सुकेशजी का सेवाभावी मन उस नामुराद में ही अटका हुआ था. रात में उन्होंने राधा से बात की और अपनी इच्छा जाहिर की. कहते हैं कि जीवनसंगिनी मन समझनेवाली हो तो पुरुष की समाजसेवा बहुत आसान हो जाती है. राधा भी इसी स्वभाव की थी. उसने अपने पति की इच्छा देख अपनी स्वीकृति दे दी. जब नामुराद के माता-पिता के पास जाकर सुकेशजी ने अपनी मंशा बतायी तो वे दोनों यूं देख रहे थे मानो इस सदी में सामने लुप्त हो चुके डायनासोर दिख गए हो.

'बावले हो क्या जो इस मुसीबत को ले जाना चाहते हो?'

'वह सब आप छोड़ दीजिए आप बताइए कि किस तरह से इसकी कस्टडी मैं ले सकता हूं?'

'अरे साहब आप तो ले जाओ और एक धेला भी मत दो... मैं मांगूंगा भी नहीं...''

सुकेशजी ने भी सचमुच एक धेला भी नहीं दिया. शायद पहली बार उन्होंने किसी को आर्थिक सहायता नहीं दी क्योंकि वह उस नन्हे बच्चे का मोल नहीं लगाना चाहते थे.

दस–बारह साल का वह नन्हा मासूम मार डांट व उलहाने सुन-सुनकर नन्हा ही रह गया था. वह कुछ नहीं जानता था, लेकिन सुकेशजी को देखकर उसे बस इतना लगा कि इस आदमी के साथ मेरा बुरा तो नहीं होगा, सो वह भी चल पड़ा एक नयी दुनिया की ओर... समाज, रिश्तेदारों व दोस्तों की बातें और रायचंदों की राय... इन सबने सुकेशजी को थोड़ा–सा परेशान ज़रूर किया. मगर वह डिगनेवाला व्यक्तित्व नहीं था और सबसे अच्छी बात यह हुई कि सुशांत को उसका साथ अच्छा लगने लगा था.

अब उन्हें नाम तो पता नहीं था. नामुराद भी नामुराद सुनते-सुनते अपना नाम ही नामुराद समझ बैठा था. लेकिन सुकेशजी ने 'ना' हटाकर उसका नाम मुराद ही रख दिया. 'तुम्हारी सब मुरादें पूरी हो बच्चे...! वे बुदबुदाए और उन्होंने उसके सर पर अपना हाथ रख दिया.

बस वह हाथ रखते ही नामुराद से मुराद बन चुके उस बच्चे की दुनिया बदल चुकी थी. सुकेशजी ने स्कूल में एडमिशन भी करवाया. लेकिन वह पूरे स्कूल को नहीं समझा सकते थे. तो बाक़ी सहपाठियों (जो कि समझते थे कि यह ना लड़का है ना लड़की) के उपहास का पात्र बनकर मुराद को स्कूल जाना मंजूर नहीं था वह घर पर ही रहता और राधा मां का हाथ बटाता. घर का सारा काम बख़ूबी करता और वह घर पर ही उसे थोड़ा–थोड़ा पढ़ना-लिखना सिखाने लगी... और अपना लेखन भी करती व मुराद को सुनाती भी... काम चलाऊ पढ़ना उसने सीख लिया था और शरीर से बलि हो चला था तो गाड़ी पर जल्दी पकड़ हो गयी. सुकेशजी भी समझ चुके थे कि उसे मुख्य धारा में लाना

लघुकथा

प्यास

कृष्णा चंद्र महादेविया

मस्तमन ने कॉलेज़ को जाने के लिए द्वार के बाहर पांव रखा ही था किंतु फिर वैसे ही उसने बहुत धीरे से पांव वापिस हटा लिया. सामने बैलों के पास बाल्टी में भरे पानी को कौवा पीने लगा था. कौवा बाल्टी में चोंच डुबोता फिर ऊपर की ओर चोंच कर पानी गटकने के साथ इधर-उधर भी सुरक्षा के निमित्त गर्दन घुमा लेता था. पांच-छः बार चोंच पानी में डुबोने और पानी गटकने के बाद कौवा उड़कर बैलों को छांव देने वाले पेड़ की चोटी पर जा बैठा.

अब द्वार लांघ कर मस्तमन आंगन से निकलने लगा ही था कि मां ने पुकारा – "मस्तमन?"

"जी अम्मा."

"बेटे पहले तो तुमने द्वार से बाहर क़दम रखा फिर हटा लिया ओर द्वार पर खड़ा होकर बाहर देखता रहा. पुत्तर बिल्ली ने रास्ता काट लिया था क्या?"

"नहीं अम्मा जी, वहां कौवा बाल्टी से पानी पी रहा था. यदि मैं चल पड़ता तो मेरे जूतों की आहट से वह डर कर उड़ जाता और प्यासा ही रह जाता. अम्मा जी, इसलिए रुक गया था.

"शाबाश बेटा."

अम्मा जी के पांव स्पर्श कर मस्तमन मस्ती से कॉलेज़ की राह बढ़ गया.

डाकघर महादेव, सुंदरगर, जिला मंडी (हि.प्र.) - १७५०१८

इतना आसान ना होगा और वह उसे उपहास का पात्र भी नहीं बनने देना चाहते थे... सो उन्होंने घर पर ही उसकी ट्रेनिंग शुरू कर दी और जल्दी ही उन्होंने जान लिया कि वह एक बहुत कुशल ड्राइवर है. बस.. वह, बावर्ची, ड्राइवर, केयरटेकर, मैनेज़र.. सब बन गया...

मुराद और सुशांत दोनों युवा हो चले थे. सुशांत ने अपने पिता का बिज़नेस संभाल लिया था, और मुराद ने घर और बाक़ी सारी ज़िम्मेदारियां एक कुशल बेटी की तरह अपने ऊपर ले ली थी. सुकेशजी व राधा दोनों ही दोनों संतानों पर अपना स्नेह समान रूप से उड़ेलते. राधा कई बार मुराद में मातृत्व का अंश महसूस करती... जब वह किसी बेटी की तरह राधा की केयर करता था. वह स्वयं को धन्य मानती कि उसे मुराद के रूप में एक और संतान मिल गयी थी.

समय बीता... सुशांत का ब्याह हुआ और बहू के रूप में रश्मि घर में आ गयी. सुशांत ने रश्मि को विवाह पूर्व ही मुराद के बारे में सब कुछ बता दिया था. उसे थोड़ी हैरानी ज़रूर हुई... लेकिन उसे अच्छा लगा कि वह एक ऐसे परिवार में जा रही है जहां इंसानियत पहले नंबर पर है बाक़ी सारी चीज़ें बाद में. धीरे-धीरे वह भी मुराद की सारी ख़ूबियों से परिचित होती गयी. मुराद के रूप में उसे सखी, सखा, ननद, देवर जो भी समझो उसका सान्निध्य मिल गया.

समय के साथ रश्मि दो जुड़वा बच्चों की मां बनी एक बेटा और एक बेटी. और पूरे समय उसने महसूस किया की मुराद उन पर अपना असीम स्नेह लुटाता था. सुकेशजी व राधा भी प्रसन्न थे. ऐसा भरा पूरा परिवार क़िस्मत से ही तो मिलता है. वे ईश्वर को धन्यवाद देते.

देखते-देखते बच्चे पांच बरस के हो गए. पर कहते हैं ना कि सब दिन समान नहीं होते. समाज के बारे में पहले सोचनेवाले सुकेशजी और राधा उस दिन मंदिर के लिए निकले. वैसे तो गाड़ी मुराद ही चलाता था... मगर उस दिन रश्मि और सुशांत भी मंदिर जाने के लिए तैयार हुए. रश्मि की बहुत दिन से इच्छा थी मां बाबूजी के साथ मंदिर जाने की. उसी ने सुशांत को भी चलने के लिए मना लिया और यह तय हुआ कि दोनों बच्चे मुराद के पास रह जाएंगे. गाड़ी सुशांत ही चला लेगा. बस...! वही पल जैसे सबकी ज़िंदगी

बदलने के लिए ही आया था. ईश्वर पर अगाध श्रद्धा रखनेवाले सुकेशजी व राधा को उस दिन ईश्वर ने बेटे बहु के साथ ही अपने पास बुला लिया और माध्यम बना वह यमराज की तरह झूमता आ रहा ट्रक. घटना स्थल पर ही सुकेशजी बेटे समेत काल कलवित हो गए थे. राधा व रश्मि की सांसें चल रही थीं लेकिन जब तक हॉस्पिटल पहुंचे तब तक सब कुछ ख़त्म हो चुका था. बदहवास मुराद दोनों बच्चों चिकी-मिकी को लेकर हॉस्पिटल आया. जब सारी बात पता चली तो दोनों बच्चों को सीने से लगाए मुराद को लगा जैसे वह एक बार फिर नामुराद हो गया. स्वयं को अपराधी मान रहा था कि क्यों वह साथ में नहीं गया. लेकिन ना जाने क्यों सुकेशजी की अधखुली आंखें जैसे उसे कह रही हों कि बच्चों का ध्यान रखना बेटा मुराद... मुराद फूट-फूटकर रो पड़ा.

तेरह दिन घर दूर और पास के रिश्तेदारों से भरा था. लेकिन चिकी-मिकी मुराद चाचा के अलावा किसी के पास नहीं जा रहे थे.

सब समझ रहे थे कि पांच साल के बच्चों को अकेले पालना कितना मुश्किल है. सुकेशजी के रिश्तेदार और शुभचिंतक, जो सचमुच शुभचिंतक थे वे फिक्र कर रहे थे कि दोनों बच्चों के भविष्य क्या होगा...? लेकिन जो तथाकथित शुभचिंतक (?) शुरू से ना-मुराद के लिए मुकेशजी का विरोध कर रहे थे... उन्हें मौक़ा मिल गया. यह क्या जानेगा कि ममता क्या होती है...?

बच्चों को पालना इतना आसान थोड़ी है...!

और क्या...! पितृत्व का भाव भी कहां से आएगा....?

हां, नहीं तो...पर यह भी क्या करें बिचारे... ईश्वर ने बनाया ही ऐसा है...!

ऐसे जुमलों से मुराद की परेशानियां अधिक बढ़ गयी थीं. लेकिन कहते हैं ना कि अच्छे लोगों की भी कमी नहीं है. सुकेशजी के कुछ ख़ास मित्र और दो-तीन रिश्तेदार ऐसे थे, जिन्होंने सारे पेपर तैयार करवाए. जिनके हिसाब से संपत्ति भले ही बच्चों के नाम थी, लेकिन कर्ता-धर्ता मुराद ही था. मुराद की बिल्कुल इच्छा नहीं थी कि संपत्ति पर उसका कोई अधिकार हो. लेकिन घर चलाने व बच्चों की परवरिश के लिए जो आवश्यक था, वह सुकेशजी के शुभचिंतकों ने किया.

एक दो दूर के रिश्तेदार और सुकेशजी के बचपन के मित्र प्रधान का बेटा यूएस में थे. तय यह हुआ कि कुछ दिन भारत में ही बोर्डिंग में रखकर बाद में बच्चों को बाहर भेज दिया जाए . मुराद भी इस बात को समझ रहा था कि बच्चों के लिए यही ठीक रहेगा. उसने बहुत मन मारकर अपनी स्वीकृति दी. बच्चे भी अलग होना नहीं चाहते थे, क्योंकि पहले से ही उन पर प्रेम का दरिया बहा देनेवाले मुराद काकू के वे अब और ज़्यादा क़रीब होने लगे थे, और उसने भी उन दोनों बच्चों को दिल से लगा लिया. जहां लोग समझते थे कि वहां ना तो मां की ममता हो सकती है, ना पिता का वात्सल्य... लेकिन मुराद की गोद वह जगह थी, जहां बच्चे स्वयं को महफूज़ महसूस करते थे.

मुराद ने दिल कड़ाकर के उनके उज्ज्वल भविष्य के लिए उन्हें अपनी गोद से अलग करने का फ़ैसला लिया. स्कूली पढ़ाई भारत में ही करके उच्च शिक्षा के लिए बच्चे विदेश चले गये. मुकेशजी के बचपन के मित्र प्रधान ने इसमें अहम भूमिका निभाई जिनका बेटा अमेरिका में रहता था.

दोनों बच्चे एक मां और पिता की तरह ही मुराद के नियमित संपर्क में थे. और दोनों का लक्ष्य था पढ़ाई पूरी करके वापस अपने घर आने का.

मुराद की भी इच्छा थी कि अपना पारिवारिक व्यवसाय जो कि अभी तक मुराद संभाल रहा था... आगे बच्चे ही संभालें.

आज बच्चे वापस आ रहे हैं इसलिए मुराद का मन था कि बच्चे सबसे पहले उसी जगह आएं जहां से उसकी यह नयी ज़िंदगी शुरू हुई थी.

फूलों वाली साइकिल की दुकान और उसके आसपास का बड़ा क्षेत्र अब राधा फार्म हाउस में तब्दील हो चुका था. बरसों की मानस यात्रा करता-करता मुराद झील तक आकर वापस पलट गया.

फ़ार्म हाउस में दाख़िल होते हुए उसे हमेशा ही मंदिर वाली फीलिंग आया करती थी. वह बुदबुदाया... 'धन्यवाद बाबूजी और राधा मां... मुझ पर भरोसा करने के लिए.'

१४३२/२४, नंदानगर,
इंदौर - ४५२०११ (म.प्र.)
मो. : ९३००३१८१८२
ईमेल - jyotijain218@gmail.com

'पेंडुलम

सुधा जुगरान

जन्म- १३ अक्टूबर
शिक्षा- एम. एससी. (रसायन विज्ञान)

विद्या ने जूते हाथ में लिये, दुपट्टा गले में लपेटा और उठ कर रेत पर नंगे पांव चलने लगी. दूर क्षितिज पर थके हारे सूरज का इंतज़ार करती धरती से मिलन का दृश्य आल्हादित कर रहा था. संपूर्ण गगन जैसे आलोड़ित हो रहा था. सूर्यास्त, इंतज़ार से राहत का समय है. पशु, पक्षी, इंसान सभी तो अपने विश्रामगृह की तरफ़ लौटते हैं. उनके लिए इंतज़ार में रत आंखें सुकून पाती हैं. एक नयी आशा में रात्रि का अवसान हो जाता है. एक नयी सुबह इंतज़ार में रहती है. सुबह रूपक है आशा का विश्वास का... खुशी का, उमंग का.

लेकिन...., विद्या एकाएक ठिठक कर धरती के आगोश में समाते उस लाल सुर्ख गोले को भ्रमित-सी निहारने लगी. पिछले दो साल से उगने वाला यह सूरज उसके लिए कुछ भी तो नया लेकर नहीं आता. उसकी ज़िंदगी का संध्याकाल लंबा हो चला है. रवि के जाने के साथ ही उसकी सुबहें रूठ गयीं, शामें रंगहीन हो गयीं. अरुणोदय की लालिमा और सूर्यास्त की लालिमा का फ़र्क उसे अब समझ में नहीं आता. सोच, टप से दो शबनम की बूंदें पलकों को गीला कर गालों पर लुढ़क गयीं.

उसने जूते पहने और तेज़ चाल से चलती हुई सड़क तक आ गयी. पिछले कुछ दिनों से उसका यह रूटीन सा बन गया था. शाम के ५ बजते ही उसकी उंगलियां लिफ़्ट का बटन दबा देतीं और लगभग ३०-४० मिनट की पैदल वॉक कर वह समुद्र के इस किनारे पर पहुंच जाती. उसके वापस घर पहुंचते-पहुंचते अंधेरा घिर जाता था. आज भी वह जब घर पहुंची तो अंधेरा घिर आया था. चाय का कप लेकर वह बालकनी में झूले पर बैठ गयी.

सुधा जुगरान

प्रकाशित पुस्तकें, संग्रह : १-गली आगे मुड़ती है, २-मुखरित मौन, ३- मेरे हिस्से का आकाश, ४- एक मन ऐसा भी, ५- थोड़ा दूर थोड़ा पास, ६- कांधों पर सलीबें (प्रकाशाधीन). ७- मनस्विनी (उपन्यास).

पुरस्कार : साहित्यिक पत्रिका पुष्पगंधा द्वारा आयोजित अंतर्राष्ट्रीय कहानी प्रतियोगिता- २०२० में, 'एक मन ऐसा भी' को द्वितीय पुरस्कार. सलिला शिखर सम्मान-२०२१ राजस्थान द्वारा, कहानी विधा में, कहानी संग्रह, 'गली आगे मुड़ती है' को सलिला साहित्य रत्न अलंकरण सम्मान, साहित्य मंडल संस्था राजस्थान द्वारा, 'साहित्य सौरभ' २०२२ की मानद उपाधि. कहानी, 'इक्कीसवीं सदी की नायिका' शब्द निष्ठा सम्मान -२०२२ में पुरस्कृत. बालप्रहरी पत्रिका द्वारा आयोजित, गंगा अधिकारी स्मृति बाल कहानी प्रतियोगिता २०२२ में कहानी, 'मछली और टैडपोल की कहानी' पुरस्कृत.

पुष्पगंधा, कथाबिंब, नई धारा, सरिता, वांग्मय, अनुसंधान, साहित्य भारती, अनुकृति, साहित्य समर्था, पुरवाई, व्यंग्य यात्रा, विश्व गाथा, मेरी सहेली, वनिता, गृहशोभा, युगवाणी, उत्तरांचल, क्षितिज के पार, संगिनी, सृजन महोत्सव, गिरि गौरव व अन्य कई पत्रिकाओं में अनेक कहानियों व लेखों का प्रकाशन.

बाल-कहानियां : बाल वाणी, बाल भारती, पायस, बालप्रहरी आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित.

उपलब्धियां : आकाशवाणी देहरादून व शिकागो हिंदी रेडियो से कहानियों का प्रसारण.

संप्रति : स्वतंत्र लेखन.

पूरा शहर जगमगाने लगा था.२०-२२ दिन पहले ही वह बड़े बेटे के पास से वापस लौटी थी. इस बार लौटना इतना आसान न था लेकिन वह अपनी सोच पर अटल थी. बड़ा बेटा निमिष दिल्ली व छोटा नितिन चेन्नई में था. दो साल पहले ऐसे ही तो एक दिन वह इसी बालकनी में बैठी रवि का इंतज़ार कर रही थी. रोज़ रवि जब आ जाते तभी वह उनके साथ चाय पीती थी. दो महीने बाद रवि रिटायर होने वाले थे. लेकिन उस दिन जब रवि लौटे तो, स्पंदनविहीन देह के साथ, बिना सांसों की गर्माहट लिये... वह आवाक रह गयी. नीचे आयी अस्पताल की एंबुलेंस की आवाज़ सुन उसने सोचा... शायद बिल्डिंग में कोई बीमार होगा.

लेकिन जब चंद मिनट बाद उसके फ़्लैट की घंटी बजी तो उसकी छठी इंद्री ने जाग्रत हो अनहोनी की सूचना दे दी. धड़कते हृदय से दरवाज़ा खोला तो रवि की खून से सनी देह के साथ ऑफ़िस के कुछ लोग खड़े थे. उसकी आंखों ने जैसे किसी को पहचाना ही नहीं. संभवतः सामने घटने वाली घटना से वह अनजान है. सामने खड़े लोगों को वह नहीं जानती. रवि के दोस्त ने बांह पकड़ कर उसे सोफ़े पर बिठा दिया, 'क्या हुआ?' वह घुटे-घुटे स्वर में किसी तरह बस इतना ही बोल पायी.

'भाभीजी घर आते समय जाने कैसे रवि की कार डिवाइडर पर चढ़कर पलट गयी. मैं पीछे ही आ रहा था. उस समय टाइम नहीं था कि आपको सूचित कर पाता. भरसक प्रयत्न कर रवि की जाती चेतना को बचाने के लिए लोगों की मदद से अपनी कार में रख पहले सीधा अस्पताल ले गया. उसके बाद आपको फ़ोन किया पर आपके फ़ोन पर घंटी ही नहीं जा रही थी. डॉक्टरों ने बहुत कोशिश की... लेकिन उसकी सांसों ने साथ छोड़ दिया. रवि के अभिन्न दोस्त अनिमेष का स्वर कातर हो कांप रहा था. भर्रा रहा था. लेकिन वह रो नहीं पा रही थी.

'बच्चों को फ़ोन कर दो,' बमुश्किल उसने इतना कहा. वह पत्थर-सी हो गयी थी. बेटे आए उससे लिपट कर रोए, दोनों बहुओं ने गले लगाया. लेकिन वह जो उस पल पत्थर बनी तो पिघल ही न पायी. पिघलने के लिए विश्वास आना भी तो आवश्यक था और उसे तो विश्वास ही न आया था रवि के जाने का. भूले-भटके कोई आंसू पलकों को गीला कर देता. दिल फूट-फूट कर रोना चाहता था. पर मन जैसे निष्ठुर बना बैठा था. पिछले दो साल कैसे बीते पता नहीं. दिल डूबता हुआ लगता. शरीर हर वक़्त घबराहट से भरा रहता. बेटों ने उसे अकेला नहीं छोड़ा. अकेले मुंबई के अपने फ़्लैट में रहने की उसकी हिम्मत भी न थी. वह पेंडुलम बन गयी दिल्ली और चेन्नई के बीच. ज़िंदगी इस कदर बिखरी कि संभलने पर ही न आयी. वह अपनी घबराहट दूर रखने के लिए दवाई खा लेती लेकिन कितने दिन? एक बेटा उसकी ऐसी हालत देख कर उसे बदलाव के लिए दूसरे के पास छोड़ जाता. दूसरा फिर पहले के पास, पर उसे अकेले इस

घर में रहने के लिए नहीं छोड़ते और न वह ही लौटने का साहस करती.

लेकिन जहां भी रहती घर अपना ही याद आता. चेन्नई रहती तो वह छोटे बेटे-बहू का घर लगता. दिल्ली रहती तो बड़े बेटे-बहू का घर. उसका अपना घर छूट गया था. उसकी एक दिनचर्या थी जो मुंबई के उस फ़्लैट में सांस लेती थी. बेटों के घर में सर्व सुख होते भी न जाने क्या था जो छूटा जा रहा था. एक दिन अपनी बड़ी बहन से फ़ोन पर बात करते उसका स्वर कातर हो गया,

'मन नहीं लगता कहीं भी दीदी...'

'कैसे लगेगा विद्या... उसे साथ लेकर ही कब गयी थी. वह तो मुंबई के तेरे घर में ही बंद है न.'

'फिर भी कोशिश तो करती हूं न....'

'कोशिश में सहजता कहां से आएगी?'

'ऐसा क्यों होता है दी, मां-बाप का घर बच्चों का घर होता है लेकिन बच्चों का घर मां-बाप का घर नहीं बन पाता...'

'क्या हो गया...तू कभी भी ऐसी नकारात्मक बातें नहीं करती थी... मुझे लगता है विद्या तेरी मनःस्थिति ठीक नहीं है, इसलिए...'

'नहीं दी... ऐसी कोई बात नहीं... पर बच्चों के अपने तौर तरीक़े हैं. वे अपने बच्चों को हमारी तरह से नहीं पालते, उनका कहना है बच्चों को ऑलराउंडर होना चाहिए... कोल्हू के बैल बन गये हैं आजकल के बच्चे. जो दोनों जॉब करते हैं वे भी बच्चों को बुरी तरह व्यस्त रखते हैं, जो एक नहीं भी करती है वह भी... खाने में भी बच्चों के लिए पौष्टिकता का कोई ध्यान नहीं... रोज़ ऊट-पटांग खाना सीख गए हैं... दरअसल किचन में जाना तो किसी को पसंद ही नहीं है न... कुक ने जो बना दिया, बना दिया, नहीं तो बाहर से ऑर्डर करने के लिए पित्जा बर्गर है न.'

'तो होने दे न... उनके बच्चे, उनका तरीक़ा...'

'और घर भी तो...कुछ भी फेर बदल पसंद नहीं उनको... यूं मेरा ख़्याल रखते हैं. लेकिन मेरी उम्र अभी मात्र ५८ वर्ष है... कैसे भूल जाऊं. कैसे एक तरफ़ बैठी रहूं. मुंबई में अकेले रहने की हिम्मत नहीं हो रही, बच्चों के घर में मन नहीं लग रहा है... करूं तो क्या करूं... ऐसा निरर्थक-सा जीवन... अजीब-सा डर समाता जा रहा है,' विद्या भाव-विह्वल सी बोली. दीदी का हृदय द्रवित हो गया.

'जब तक सच की आंख से आंख मिला कर सामना नहीं करेगी... तब तक डर परेशान करता रहेगा. दो साल होने को आए तू रवि की फ़ोटो तक भी देखने को तैयार नहीं. इसी कारण तेरहवीं की पूजा भी फ़ोटो के बिना ही करनी पड़ी.'

विद्या को याद आया. बेटों ने पूजा में पिता की बड़ी सी फ़ोटो फूल माला डाल कर रख दी थी. विद्या की नज़र पड़ी तो एक चीख़ के साथ बेहोश हो गयी थी. वो दिन और आज का दिन रवि की फ़ोटो आलमारी से बाहर नहीं निकाली गयी.

'हिम्मत नहीं होती दी... रवि को देखने की... न जाने मुझे क्या हो जाएगा?'

'यही है तेरा डर जिससे तू भाग रही है. अपने घर में रहने की हिम्मत कर विद्या... रवि अपनी ज़िंदगी जी कर चला गया. तुझे अभी जीनी है... तेरे अंदर का डर तुझे ख़त्म कर देगा. डर फिर चाहे किसी इंसान से हो या भाव से, यदि हम उससे डरते हैं तो वह हम पर हावी होता है और सामना करते हैं तो हम उस पर हावी हो जाते हैं.'

'आपकी बातों से हिम्मत आती है दी...लेकिन इतना आसान नहीं लगता.'

'तू कोशिश कर तो सही....तू कहेगी तो कुछ दिन के लिए मैं आ जाऊंगी तेरे पास...लेकिन आना तभी जब मन से जीतने की चाह हो...आख़िर रहना तो तुझे अकेले ही है.'

'लेकिन दी अकेले रहूंगी कैसे..?'

'फिर वही बात...व्यस्त इंसान अकेला हो सकता है लेकिन उसे अकेलापन नहीं हो सकता.'

'वही तो...कहां व्यस्त करूंगी ख़ुद को... 'वह रूआंसी-सी हो गयी, 'हर समय अकेले में कई ख़याल आकर डराएंगे, फिर कैसे दिन बिताऊंगी?'

'पहले तो अपने दिल से पूछ विद्या कि वह चाहता क्या है... बच्चों के घरों के बीच हमेशा इसी तरह इधर से उधर डोलते रहना या अपने घर पर अकेले रहना. दोनों रास्ते दुष्कर हो सकते हैं. लेकिन तुझे उस रास्ते पर सुकून की तलाश करनी है जो कम दुष्कर लगे.'

जवाब में वह चुप रही. एकाएक कोई जवाब नहीं सूझ रहा था.

'विद्या क्या तुझे अपनी जड़ों से उखड़ना मंजूर है? जब तू अपना रास्ता ढूंढ लेगी तो संबल कई मिल जाएंगे... तूने पापा से ज़िद्द करके कत्थक नृत्य सीखा था. कविता लिखने का तुझे शौक़ है. पाक कला में तेरा अभी भी मन रमता है. आज सोशल मीडिया ने कई सशक्त माध्यम प्रदान किए हैं किसी भी शौक़ को दूसरे तक पहुंचाने के लिए. जब मन से रास्ता ढूंढेगी और उस पर चलना चाहेगी तभी तेरा निर्णय सार्थक होगा... दूसरे की राय इसमें काम नहीं करती है... मात्र एक रोशनी दिखा सकती है बस.'

'बताती हूं दी... सोच कर,' कह उसने फ़ोन ऑफ़ कर दिया.

उस रात नींद नहीं आयी. दीदी की बातें याद कर खुद को समझाती रही. 'मुझे डरना नहीं है... डर का सामना करना है... अकेलेपन का सामना करना है. दोनों बच्चों के घरों में कब तक यूं डोलती रहूंगी.' जड़ से उखड़ने जैसा अहसास उसे पिछले काफ़ी समय से घेर रहा था. दीदी ने उस अहसास को शब्द दे दिए. यही तो है वह भाव जो उसे चैन नहीं लेने दे रहा. रवि के जाते ही उसका घर, उसका वजूद, उसकी दुनिया सब कुछ बिखर गयी. मुंबई में अपना आशियां सजाया था. उस घर के कोने-कोने में वह है, रवि है. लेकिन रवि के जाते ही वह उखड़ गयी. दीदी ठीक कह रही हैं. उसका मन कैसे कहीं लगेगा, वह तो मुंबई के अपने घर में बंद है न. वह लगेगा तो वहीं, और लगेगा तभी जब वह सच का सामना करेगी और सच? वह कितना भयानक है. विद्या को लगता है जैसे उसके अकेले होते ही वह सच उसे निगल जाएगा. वह जी नहीं पाएगी उस सच के साथ.

लेकिन दो साल होने को आए, जितने यत्न वह और बेटे कर सकते थे उसे फिर से जीवन की तरफ़ लौटाने के, वे सब किए जा चुके हैं. क्या एक बार यह भी करके देख ले. पूना में दीदी हैं. शहर में उसकी इतने वर्षों की जान-पहचान है. घने अंधकार में दूर दिखती रोशनी की एक किरण जैसा विश्वास है उसके पास. रात भर सोच कर उसने मन मज़बूत किया और सुबह बहुत कमज़ोर मन के साथ निमिष को अपना फ़ैसला सुनाया.

'कैसी बात करती हो मम्मी.... कैसे रहोगी अकेली.... अकेले मैनेज़ करना इतना आसान है क्या?'

'अगर ड्राइविंग सीखने से पहले ही कह दोगे कि एक्सीडेंट हो जाएगा तो सीखने वाले की हिम्मत तो टूट ही जाएगी न. इस समय मुझे तुम्हारी केयर की नहीं सहारे की ज़रूरत है. एक बार कोशिश तो कर लेने दो निमिष... वरना तुम दोनों तो हो ही. मैं तुम दोनों के घर में पेंडुलम बनी डोलती रहूं... क्या यह अच्छा नहीं होगा कि तुम और नितिन बारी-बारी से मेरे पास आते रहो. धीरे-धीरे मुझे आदत पड़ जाएगी और फिर मैं अकेली कहां हूं. नहीं रह पाऊंगी तो चली आऊंगी. दिल में कसक तो न रहेगी कि मैंने कोशिश नहीं की थी.'

'लेकिन मम्मी...वहां अकेले....मुझे समझ में नहीं आ रहा आपका फ़ैसला?'

'अभी तो मुझे भी समझ नहीं आ रहा. बस इतना जानती हूं कि मेरी जड़ें वहीं हैं. उस घर की हवा में मेरी आत्मा सांस लेती है.'

विद्या का स्वर इतना कातर था कि निमिष से कुछ बोला नहीं गया. वह विद्या को लेकर मुंबई आ गया. काफ़ी समय से बंद पड़े घर को रहने लायक किया. सारी सुविधाएं करके पूना मौसी को फ़ोन कर दिया. एक हफ़्ता निमिष रहा और एक हफ़्ता दीदी. उसके बाद वह भी चली गयीं.

दीदी ने अपने रहते कोशिश की कि रवि की बड़ी-सी फ़ोटो आलमारी से निकाल कर बाहर लॉबी में रख दे. लेकिन विद्या ने रखने नहीं दी, 'अभी नहीं दी... जिस दिन मुझे अंदर से लगेगा... जिस दिन मन को विश्वास हो जाएगा...सच का सामना करने की ताकत आ जाएगी, यह काम मैं ख़ुद कर लूंगी.'

दीदी उसे कई बातें समझा कर वापस चली गयी थीं. पहली रात वह सो नहीं पायी. अकेले रहने का इरादा बार-बार कमज़ोर पड़ रहा था. सुबह के समय आंख लग गयी तो देर तक सोती रह गयी, कामवाली रेशमा के बार-बार घंटी बजाने से नींद खुली. दरवाज़ा खोला तो रेशमा बदहवास सी खड़ी थी, 'अरे बाबा रे... कैसा सोता है दीदीजी... बड़ी दीदी मेरे को बोल कर गयी... कि दीदी का ख़्याल रखना. मैं तो पहले ही दिन घबरा गयी,'

'ओह! नहीं रेशमा... ऐसा कुछ नहीं... रात भर सो नहीं पायी, इसलिए आंख लग गयी थी', 'कैसा नींद आएगा दीदी... अकेला दिल घबराता होगा... थोड़ा दिन मेरी छोटी बेटी को अपने पास रख लो. आदत हो जाए अकेला रहने की तब घर ले जाऊंगी,' वह स्नेह से रेशमा को देखती रह गयी. दिल में कहीं कुछ जुड़ा गया. इतनी भी अकेली नहीं

है वह. चलना शुरू करेगी तो संबल भी मिल ही जाएंगे.'

'शुक्रिया रेशमा... मुझे बहुत अच्छा लगा यह सुन कर... अगर नहीं रह पायी तो तेरी बेटी को अपने पास रख लूंगी... पढ़ा भी दूंगी उसे' सिर हिलाकर रेशमा अपने काम पर लग गयी. रेशमा जितनी देर काम करती, उतनी देर उसकी बकर-बकर चालू रहती. रेशमा उसके घर में कई सालों से काम कर रही थी. उसकी बकर-बकर में कभी भी रुचि न लेने वाली विद्या अब उसकी बातें ध्यान से सुनने लगी थी. दीदी उसके लिए एमेज़ॉन से काफ़ी सारी उसकी पसंद की क़िताबें ऑर्डर करके चली गयी थीं. रेशमा १२ बजे तक काम करके जाती. जब तक वह नहा धोकर आती, तब तक दीदी का फ़ोन आ जाता. दोनों बेटे भी रोज़ फ़ोन करते. बहुएं पोता-पोती भी फ़ोन पर टच में बने रहते. हर रात उसका डर हल्का-हल्का कुछ कम हो रहा था.

शाम फिर भी परेशान करती. शाम होते ही उस शाम की भयावह यादें पीछा न छोड़तीं. इसी ऊहापोह में एक दिन वह उठ कर समुद्र के इस किनारे पर आकर बैठ गयी. उसे अच्छा लगा. फिर रोज़ आने लगी. शाम का यह रूटीन सेट हो गया.

सब कुछ मंथर गति से चलने लगा था फिर भी कुछ ऐसा था उसके अंदर जो बाहर आने को बेचैन था. बार-बार मन व्याकुल हो जाता, पता नहीं कितना रह पाएगी ऐसे... नहीं रह पाएगी तो वापस बेटों के घरों के बीच पेंडुलम ही बन जाएगी. हर दिन सोचती. लेकिन निर्णय किसी आने वाले कल पर छोड़ देती.

बालकनी में बैठी वह बहुत देर से सामने फैले जगमगाते शहर को घूर रही थी. इंसान सबसे अधिक ख़ुद से भागता है या फिर परिस्थितियों से. वह समझ नहीं पा रही थी. एक ही स्थिति-परिस्थिति को लेकर सबकी प्रतिक्रियाएं अलग-अलग होती हैं. इंसान अगर ख़ुद से न भागे तो किसी भी परिस्थिति का सामना कर सकता है. दीदी कहती है, तुझे ख़ुद को अपने घर में रहने के लिए वक़्त देना होगा. अपना जीवन अस्थिर या स्थिर बनाना तेरे हाथ में है.

'नहीं उसे पेंडुलम जैसी इधर से उधर, उधर से इधर डोलती हुई ज़िंदगी नहीं जीनी है. स्थिरता लानी है अपने जीवन में. अपनी ऊर्जा, अपनी कोशिश, सही दिशा में लगानी है. एकाएक वह उठी और बेडरूम में जाकर, हिम्मत करके वह आलमारी खोल दी, जिसमें रवि की बड़ी-सी तस्वीर रखी हुई थी. उसने तस्वीर बाहर निकाली और बाहर लॉबी में आ गयी.

सामने वाले कोने पर गोल टेबल रखी थी. उसने तस्वीर का कपड़ा हटाया और आंखें बंद कर लीं. अंदाजे से तस्वीर टेबल पर दीवार के सहारे टिका दी. तस्वीर से नज़रें चुराकर उसने अगरबत्ती जला कर स्टैंड पर लगायी और फ़ोटो के सामने रख दी, फिर न जाने किस आवेग के वशीभूत हो सीधे रवि की आंखों में झांकने लगी.

क्षण भर में ही उसके शरीर का संपूर्ण आवेग हिलोरें लेने लगा था. अंदर का दो साल से रुका तूफ़ान बाहर आने को बेचैन हो रहा था, पर उसकी नज़र रवि की नज़रों से हटी नहीं. अकस्मात उसका चेहरा भावों के आगोश में आ बिगड़ने लगा. तूफ़ान के जखीरे आंखों में उमड़ने लगे. गंगा-जमुना गालों पर प्रचंड वेग से बहने लगी. वह फूट-फूट कर रो पड़ी. रोते-रोते उसकी हिचकियां बंध गयीं. उसने हिचकियां लेते अपना सिर फ़ोटो के सामने टेबल पर टिका दिया. रोते-रोते वह कह रही थी, 'अब कहीं नहीं जाऊंगी रवि... कहीं नहीं... यहीं रहूंगी अपने घर पर... तुम्हारे साथ, तुम्हारे होने का अहसास फिर से मेरे डूबे मन के खोए आत्मविश्वास को वापस ला देगा. जीने का जज्बा दे देगा. उसकी आंखें बरसती चली जा रही थीं... बरसतीं चली जा रही थीं और घनघोर बरसात के बाद की नीले आकाश की सी मनभावन, पावन स्वच्छ आत्मिक शक्ति उसके अंदर पसर रही थी.

टेबल से सिर उठा, आंसू पोंछते हुए वह सोच रही थी. कल सुबह से ही डांस की प्रैक्टिस शुरू करनी है. डांस स्कूल के बारे में जानकारी इकट्ठी करके टीचिंग के लिए अप्लाई करना है, सबसे बड़ी और अहं बात यह कि रेशमा की बेटी को अपने पास रख कर उसकी पढ़ाई की पूरी ज़िम्मेदारी उठानी है. ज़िंदगी घसीटनी या बितानी नहीं है बल्कि उद्देश्यपूर्ण रूप से जीनी है. अब विद्या की आंखों के अश्रुकणों में इंद्रधनुष चमक रहे थे. वह इत्मीनान से मुस्कुराते होठों से अपने आंचल से रवि की तस्वीर को पोंछने लगी.

१६ ई, ई. सी. रोड,
देहरादून- २४८००१. (उ. खं.)
मो.: ९९९७००५०६.
ई-मेल - sudhajugran@gmail.com

एक नया संबंध

रजनीश राय

मूल रुप से कथाकार और उपन्यासकार व कविता लेखन. ४ कहानी संग्रह, २ कविता संग्रह और तीन उपन्यास प्रकाशित. विभिन्न साहित्यिक पत्र पत्रिकाओं : परिकथा, कथाक्रम, कथादेश, साक्षात्कार, गगनांचल, अमल उजाला, दैनिक जागरण आदि में नियमित रुप से कहानियां, कविताएं और आलेख आदि प्रकाशित. इसके साथ ही समय-समय पर आकाशवाणी तथा दूरदर्शन से कहानियों व वार्ताओं आदि का प्रसारण. इसके अलावा घूमने व थिएटर में काम करने का शौक़. युवा कथाकार का सम्मान और वेस्ट वियुवर्स अवार्ड प्राप्त. हाल ही में इंडिया नेटबुक्स से एक उपन्यास 'जाग मुसाफिर' प्रकाशित.

मेरी हालत बिल्कुल उस सुदामा विप्र-सी हो आयी थी जो भगवान श्री कृष्ण के दरबार से लौटकर ख़ुद अपना ही घर भूल गये थे. ऊंचे-ऊंचे भवन, चौड़ी-चौड़ी सड़कें, बड़े-बड़े मॉल और गोल-गोल चौराहे फ्लाईओवर्स, पुल तथा अत्याधुनिक मशानें जिनसे समय, श्रम और सम्मान, तीनों बचाये जा सकते थे.

अब सिर्फ़ स्काई-स्क्रैपर्स का ही अभाव रह गया था, यहां पर.

मुझे अपने छोटे-से शहर की पुरानी छवि याद हो आयी... संकरी सड़कों पर ठिठका हुआ ट्रैफ़िक, पतले फ़ुटपाथों पर गंसी हुई भीड़, तंग गलियों से गुज़रते हुए जानवर. हर मौसम में धूल की एक झीनी-सी पर्त उस पर छायी रहती. दिन का कोई भी वक़्त हो, कुछ कर्कश आवाज़ों का बवंडर किसी बौराये पक्षी-सा उसके सिर पर मंडराता रहता. उसकी गंदी नालियों में कीड़े पड़ चुके थे. और ख़ूबसूरत वॉटर पार्क के नाम पर मटमैले पानी के कुछ डबरे थे जिनसे आठों पहर एक दमघोंटू दुर्गंध उठा करती थी. उन सदाबहार रोगजन्य जलाशयों के निकट तब मैं घंटों बैठा रहा करता था, जब उसकी बजबजाती सतह पर तैरते विषयुक्त कीड़ों को देखने का आकर्षण मुझे वहां खींच ले जाता.

... छोटी-छोटी आशा, छोटे-छोटे सपने, छोटी-छोटी दौड़ यही कुछ पहचान थी मेरे छोटे से शहर की.

मुझे उसकी याद सताने लगी. ... पुराने बिंब चाहे कितने भी उबाऊ, साधारण एवं दंशयुक्त क्यों न हों, वे होते हैं सर्वाधिक प्रिय हम सबको.

प्राचीनता में एक सहज एवं नैसर्गिक आकर्षण होता है, जिसे नवीनता छू भी नहीं पाती.

मैंने उस छोटे से शहर में अपना बचपन गुज़ारा था. अफ़सोस, मेरा बचपन और वह शहर; दोनों ही हमेशा के लिए जा चुके थे. अब उनकी मधुर स्मृतियां ही मेरे जीवन की अनमोल दौलत थी.

मैंने देखना चाहा, पुराने शहर का कोई भूला-भटका चिह्न अब तक बचा भी है या नहीं.

मैंने कार के शीशे नीचे गिरा लिये. मैं निराश हुआ. तमाम कोशिशों के बावजूद भी कोई ऐसा संकेत नहीं मिल सका मुझे, जिसे मैं अपने पुराने प्रिय शहर से जोड़कर देख सकूं. न अब दीन-हीन सी दिखने वाली छोटे-छोटे दरवाज़ों वाली दुकानें रही थीं, न अब दरिद्र से दिखने वाले अति साधारण व्यवसायों से संयुक्त भोले-भाले लोग रहे थे, न अब तड़ीपार से दिखने वाले त्याज्य पशुओं का रंग-बिरंगा झुंड रहा था.

यानि जो कुछ असुंदर, अनाकर्षक और अग्राह्य था, वह सदा-सदा के लिए विदा हो चुका था इस भूमिखंड से.

अर्थात एक क़ीमत अदा की थी, इस शहर ने ख़ुद को स्मार्ट बनाने के लिए. लेकिन जो क़ीमत सर्वाधिक तकलीफ़देह थी इस शहर के लिए, वह थी इसकी हरियाली, जो इसकी धरती से उठती हुई गर्द से ढंकी रहती थी और जो बारिश के मौसम में चमकते कांच-सी निखर आती. मैंने देखा, बड़े-बड़े नीम और पीपल और बरगद और शीशम और गुलमोहर के पेड़ काटे जा चुके हैं. गुलाब और गेंदे और मेंहदी की झाड़ियों को नष्ट किया जा चुका है. गुड़हल और कनैल और पाकड़ के छोटे दरख़्त उखाड़े जा चुके हैं.

कोई मुझसे पूछे कि और क्या कुछ खोया था इस शहर ने जो अत्यंत मूल्यवान और यादगार था, तो मैं कहूंगा इसकी ऐतिहासिक धरोहर. यद्यपि इसके ऐतिहासिक अवशेषों को निहारने के लिए दूर-दूर से कोई पर्यटक नहीं आया करते थे, फिर भी मध्यकालीन मंदिरों, किलों, द्वारों, कुओं और तोरण के भग्नावशेष इस शहर की शान हुआ करते थे.

उन ऐतिहासिक प्रतिमानों की याद आते ही मुझे, बरबस, पूरन मोची का स्मरण हो आया. ... वह मेरे इलाक़े में अवस्थित एक ऐतिहासिक द्वार की छत्रछाया में बैठा करता था. उसकी दुकान अपनी स्थायी दुकान हुआ करती थी. वह उन मोचियों की भांति नहीं था जो सुबह अपने साजो-सामान के साथ आाते हैं और दिन ढलते ही उसी के साथ रुख़सत भी हो जाते हैं. उसकी पूरी दुकान एक बड़े से बक्से में भरी सुई थी जिसमें घिरनी नए पहिए लगे हुए थे. वह चाहता तो उस बक्से को ढकेलकर अपने घर तक ले जा सकता था. मगर उसने उसके पहियों को मोटी जंजीर से बांधकर हमेशा के लिए वहीं रख छोड़ा था.

अपनी किशोरावस्था और जवानी के दिनों में मैं पूरन मोची से मिला करता था. तब एक दिन, अचानक मेरी क़िस्मत बदल गयी थी. मैं अपने अकिंचन दिवसों से बाहर निकल आया था. नौकरी के लिए भेजी गयी मेरी एप्लीकेशन एक अंतर्राष्ट्रीय कंपनी द्वारा मंजूर कर ली गयी थी. मैंने आनन-फानन में अपना शहर छोड़ दिया था. मुझे एक सुसंपन्न, समृद्धशाली एवं प्रतिष्ठित भविष्य बुला रहा था. तब भला एक अभावग्रस्त, अपमानजनक तथा अशोभनीय वर्तमान से कौन चिपटे रहना चाहेगा.

तब मैंने अपना शहर ही नहीं छोड़ा था, बल्कि अपना देश भी छोड़ दिया था तब. और कामकाज़ के सिलसिले में वर्षों तक विभिन्न देशों में घूमता रहा था.

यद्यपि सरस्वती मां की कृपा मुझ पर कुछ कम नहीं हुई थी. परंतु देवी लक्ष्मी ने भी ख़ूब खुलकर आशीर्वाद दिया था मुझे. मैं जितना ज्ञानी नहीं था, उससे कहीं ज़्यादा धनवर्षा हुई है मुझ पर.

अपने धनकुबेरों को प्रसन्न रखने की गर्ज से मुझे दिन-रात दौड़ते रहना पड़ता है. और इसी 'दौड़' के रास्ते में मेरा पुराना शहर आ गया है आज. अब कुछ दिन यहां व्यतीत करने होंगे मुझे. ... मैं एयरपोर्ट से सीधा अपने होटल की ओर जा रहा हूं.

व्यावसायिक गतिविधियों के प्रत्येक चरण में मुझे पूरन मोची की याद बनी रही थी. ... मीटिंग्स हों, डिस्कशन्स हों या फिर सिग्नेचर कैम्पेन; पूरन मोची एक अदृश्य तरंग-सा मेरी अंतश्चेतना में झनझनाता रहा था.

पूरन मोची से एक आत्मीय रिश्ता था मेरा. वे ग़रीबी

के दिन थे जब मैं उससे मिला करता था. मेरी घिसी-पिटी चप्पलें हर दूसरे-तीसरे दिन टूट जाया करती थीं. मेरे पुराने, बदरंग जूते हर हफ़्ते फट जाया करते थे. मेरा कबाड़-सा दिखने वाला लेदर बैग अक़्सर ही भसक जाया करता था. तब उनकी मरम्मत करवाने के सिवा मेरे पास कोई दूसरा चारा नहीं हुआ करता था. क्योंकि मेरे पास इतने पैसे नहीं होते थे कि मैं उन्हें नया ख़रीद सकूं.

पूरन मोची मेरी समस्त चीज़ों को पूरे मनोयोग से दुरुस्त किया करता था. जबकि इस बात का पक्का भरोसा शायद कभी न होता कि उसका मेहनाता उसे प्राप्त होकर रहेगा या नहीं. क्योंकि मैं प्राय: उससे उधार पर ही अपने सारे काम करवाता.

मैं दरिद्र था, और वह महादरिद्र. फिर भी मुझसे कभी आनाकानी नहीं की उसने. जब मैं कभी अफ़सोस जताता — ''चाचा, मैंने तुम्हारे पुराने पैसे तो अभी दिये नहीं.'' तो वह किसी कर्तव्यपरायण योगी-सा ध्यान लगाए, अपनी सिलाई में मग्न, सिर झुकाये-झुकाये ही कहता — ''कोई बात नहीं भैया, जब हो जाएं तब दे देना.''

इस तरह धीरे-धीरे वह मुझे भली-भांति पहचानने लगा था. हमारी पहचान रफ़्ता-रफ़्ता वार्तालाप में बदलती गयी थी और वार्तालाप में हम एक-दूसरे के क़रीब आते गये थे. हमारी बातचीत में हमारे दुख-सुख शामिल होते जिसमें दु:ख का पलड़ा सदैव भारी रहता और दु:ख तो एक ऐसी चाशनी है, जिसमें गिरकर सब एक हो जाते हैं.

मैंने सोचा, जब वर्षों बाद क़िस्मत ने इस शहर में एक बार फिर से भेज ही दिया है, तो क्यों न अपने उस पुराने मित्र से मिल ही लूं. ... सच, हम मित्र जैसे ही हो गये थे. यद्यपि जब मैं किशोर था, तब वह एक युवक और जब मैं एक युवक हुआ तो वह अधेड़ हो चुका था.

मैंने निर्णय लिया, मैं उसे खोजूंगा. जबकि यक़ीन था मुझे कि अब वह भयंकर रूप से बूढ़ा हो चुका होगा. मुमकिन है, उसने इस नश्वर संसार को अलविदा ही कह दिया हो. किंतु मैं कदापि ऐसा नहीं सोचना चाहता.

□

दूसरे दिन, शाम के वक़्त, जब मुझे फ़ुर्सत मिली पैदल ही होटल से निकल पड़ा. संयोग से, मेरा होटल उस इलाक़े में ही था, जो कभी मेरा अपना इलाक़ा हुआ करता था. तब भी मैं पूरन मोची के पास पैदल ही जाया करता था और आज भी मैंने पदयात्रा को ही अहमियत दी.

किंतु उस इलाक़े की कायाकल्प ने मुझे काफ़ी भ्रमित किया. मुझे कई जगह पूछताछ करनी पड़ी. तब जाकर मैं उस स्थान तक पहुंच सका जहां कभी पूरन मोची बैठा करता था.

मैं चाहता था, धरती के टुकड़े को अपने हाथों से स्पर्श करूं जहां कभी पूरन मोची दिन के बारह घंटे, अनवरत बैठा रहा करता था. लेकिन उस वक़्त यह एक नामुमकिन-सी बात थी. क्योंकि वहां अब एक चौड़ी सड़क बन चुकी थी जिस पर संध्या का उत्फुल्ल ट्रैफ़िक बेतहाशा दौड़ रहा था. मुझे लगा, कार, बस, ट्रक, लॉरी, स्कूटर, बाईक, जीप सबके सब पूरन मोची को रौंदते हुए भागे जा रहे हैं. कितना भयावह था, यह सच कि यही वह जगह हैं जहां वह आराम से पालथी मारे कभी बैठा रहा करता था. लेकिन अब वहां उन दिनों की कोई चीज़ शेष नहीं रह गयी थी. ... न उस सरॉय का ऐतिहासिक द्वार जिसे शेरशाह सूरी ने बनवाया था, न उसकी बक्सेनुमा, छोटी-सी पहिएदार दुकान और न ही स्वयं योगीराज पूरन मोची.

''यहां एक पूरन मोची हुआ करता था. जानते हो?'' मैंने एक कन्फेक्शनर से पूछा.

वह एक बूढ़ा दुकानदार था जो अपनी मूछों में हंसता-सा जान पड़ता था. संभव है, मैं उसे पहले भी कभी देख चुका होऊं परंतु उसके पुराने दिनों की कोई याद अब मेरे जेहन में शेष नहीं रह गयी थी.

''पूरन मोची ई-ई-ई. वो बुड्ढा- आ...आ...आ... वह तो इस शहर से चला गया कहीं दूर. हाय-हाय-हाय उसने बहुतेरी कोशिश की अपनी दुकान बचाने की. अधिकारियों के आगे हाथ-पैर जोड़े. इंज़ीनियर साहब से मिन्नत की. नगर-निगम के कर्मचारियों को भैया-बाबू कहा. यहां तक 'तोड़ू-दस्ते' के आगे लेट तक गया था वह. मगर सरकारी फरमान के आगे भी किसी की चलती है भला. हाय-हाय रे ए-ए-ए.... ख़ून के आंसू रोकर रह गया वह बेचारा बुड्ढा. समझो भैया, ऐरे-गैरे के लिए अब इस स्मार्ट-सिटी में कोई जगह नहीं रह गयी है. सो वह अपनी जान लेकर कहीं रुख़्सत हो

गया है. अब वह कहां गया, कहां नहीं, मुझे कुछ नहीं पता. मगर लोग कहते हैं, वह शिवकुटी में जा बसा है.

बूढ़ा उदास हो गया. मानो वह उसका लंगोटिया यार रहा हो.

मुझे पहली बार स्मार्ट-सिटी के सुव्यवस्थित ढांचे से नफ़रत हुई. मुझे लगा जैसे आज़ादी जैसी सर्वोत्तम वस्तु के लिए देशवासियों को अनेकों बलिदान देने पड़े थे, वैसे ही स्मार्ट-सिटी की सुव्यवस्थित व्यवस्था को हासिल करने के लिए अनगिनत बेबस इंसानों को अपनी भूख, इच्छा और ख़ुशियों की कुर्बानी देनी पड़ी है.

शिवकुटी एक मलिन बस्ती जो यहां से पैंतीस किमी. दूर शहर की परिधि पर बसी हुई है. वहां जाने के लिए कोई पक्की सड़क नहीं है. सिर्फ़ एक कच्चा रास्ता है जो जितना समतल है, उतना ही पथरीला भी है. इस पर चलने का मतलब है सुख और दु:ख का साथ-साथ अनुभव करना.

अगले दिन गोधूलि बेला में मैं शिवकुटी के मुहाने पर खड़ा था. मैंने टैक्सी ले ली थी जिसे मैंने सड़क पर छोड़ दिया था. मैंने निर्णय लिया कि मैं शिवकुटी तक जाने वाले पतले पथ पर पैदल ही चलूंगा.

मैं दुनियां की निग़ाह में एक संपन्न एवं समझदार व्यक्ति मूढ़ता कर रहा था. गुज़रे ज़माने के एक अस्वाभाविक रिश्ते ने मुझे इतना विवश कर दिया था कि मैं दर-दर भटकने को तैयार भी था उसके लिए.

मैंने चारों ओर अपनी दृष्टि दौड़ाई. हरी-भरी पृथ्वी का असीमित प्रसार चहुंओर विद्यमान था. स्मार्ट-सिटी के लिम्ब्स अभी इस भूभाग तक नहीं पहुंचे थे. जिस दिन स्मार्ट-सिटी का विशालकाय दानव अपने हाथ-पांव फैलाता हुआ यहां तक चला आयेगा, उस दिन यह हरी-भरी धरती भी नेस्तनाबूद हो जायेगी.

शिवकुटी सामने थी, किसी हरे-भरे जंगल में काले-चितकबरे पत्थरों-सी उभरी हुई. यह उन उपेक्षित, बेसहारा और बेकार लोगों की बस्ती थी जिन्हें दुनियां ने नाकारा समझ लिया था. क्योंकि वे कोई ऐसा काम नहीं करते थे जिससे प्रचुर मात्रा में धनवर्षा हो सके. वे कबाड़ी थे, रिक्शा-चालक थे, गारबेज-पिकर्स थे, मज़दूर थे, मोची थे, ड्राइवर थे, खलासी थे. उनकी निर्धनता वही यहां ले आयी थी उन्हें. इसीलिए यह बस्ती कंगलों की बस्ती कही जाती थी. वे स्मार्ट-सिटी की चकाचौंध के आगे इतने फीके पड़ गये थे कि अब वे किसी अनुपयोगी वस्तु से त्याज्य हो चुके थे.

मुझे कोई दस मिनट चलना पड़ा. तब एक मोड़ आया जिसके कोने पर एक झाड़ीनुमा अनजाना-सा वृक्ष खड़ा था. जिस पर कुछ पीले-पीले फूल पड़े थे.

''सुनो, क्या तुम पूरन मोची को जानते हो?'' मैंने एक बदहाल से दिखने वाले नौजवान से पूछा.

''हां-हां, जानता हूं. वो यहीं तो बैठता था. मगर अब.''

''... तो क्या अब वो इस दुनियां में नहीं है?''

''नई, नई... ऐसा नई है. वो है तो, मगर बीमार है. दवा-दारू के पैसे नई हैं तो अब बिस्तर पर पड़ा है बेचारा. जिन पर उपकार किया उसने, वे अब नहीं पूछते उसे.''

वह मुझे एक ऐसी जगह ले गया, जिसे न घर कहा जा सकता है, न झोपड़ी, न कुटिया. वह जनाना धोती से घेरा हुआ एक पारदर्शी एकांत था जिसकी छत केवल एक पतली प्लास्टिक से बनी थी. मैं सोच रहा था, कोई कैसे जाड़ा, गर्मी, बरसात के दुखदायी दिनों को इसके सहारे काट सकता है.

निस्संदेह, वह पूरन मोची ही था; परंतु ज़मीन-आसमान-सा फ़र्क आ गया था उसमें. कहां वह फुर्तीला, मेहनतकश और उदार युवक, कहां यह अकर्मण्य, उदासीन और निस्तेज वृद्ध. मुझे लगा, मैं किसी मरियल देह को देख रहा हूं जो फिलहाल किसी पिंजर से ज़्यादा नहीं रह गयी है.

''पूरन, पहचाना मुझे?''

मैं घुटनों के बल वहीं फ़र्श पर बैठ गया, जहां पूरन की लगभग मूर्च्छित काया पड़ी हुई थी.

उसने आंखें खोलीं और एक अजनबी-सा देखता रहा मुझे. ''कौन हो भाई? कुछ याद नहीं आता.'' पूरन ने कहा.

उसकी खांसी जो शुरू हुई तो अबाध्य गति से चलती ही रही.

''मैं... नीरज, जो कभी तुम्हें पैसे नहीं देता था.''

उसकी आंखें शून्य में जा टिकीं, मानों पुराने दृश्यों को संजोने की चेष्टा में मग्न हो.

''ओह, तुम! बड़े दिनों के बाद दिखे भैयन.''

''दुनिया की भीड़ है काका. आदमी खो ही जाता है देर-सवेर, कैसे हो?''

''देख तो रहे हो. मरने का इंतज़ार कर रहा हूं.''

मुझे अफ़सोस हुआ. मैंने यह सवाल पूछा ही क्यों? उसकी मरणासन्न स्थिति देखकर भी कुछ पूछना क्या बाक़ी रह गया था अभी?

मुझे लगा, यही वह अवसर है जब मैं उसकी कृतज्ञता के बोझ को उसे ससम्मान वापस कर सकता हूं.

''तुम्हें कुछ नहीं होगा. तुम ठीक हो जाओगे. मैं तुम्हारे इलाज़ का पूरा बंदोबस्त कर दूंगा. तुम यहां से दूर एक अस्पताल में जाओगे. वहां डॉक्टर होंगे, नर्स होंगी. वे तुम्हारे शरीर की पूरी जांच करायेंगे. तुम्हें दवाइयां देंगे. कुछ ही दिनों में बिल्कुल चंगे हो जाओगे तुम.''

तब मैंने एक एम्बुलेन्स बुलाई और पूरन मोची की जर्जर काया को उस पर लादकर एक सुव्यवस्थित एवं अत्याधुनिक अस्पताल में भरती कराया.

कई दिनों बाद...

''अब तुम बिल्कुल ठीक हो गए, काका.'' — मैंने कहा.

''तुम्हारी कृपा से भैयन. लेकिन तुमने मुझे उतना लौटा दिया, जितना मुझसे लिया नहीं था.'' — उसने कहा.

''मुसीबत की छोटी से छोटी मदद भी दुनिया की सबसे बड़ी दौलत होती है, काका-जो-तुमने मुझे दी. और जानते हो ये अस्पताल उसी शहर में बना है, जहां तुम अपनी दुकान लगाते थे.'

''मगर मुझे अब इस शहर से कोई शिकायत नहीं है भैयन. ये दुनिया किसी के लिए नहीं रुकती. सबसे बड़ी कमी है इस दुनिया में ग़रीब रहना. जो कि मेरे पास थी.'

तब, मुझे लगा, मैं धीरे-धीरे स्मार्ट-सिटी के इस कातिल ढांचे को तहे-दिल से स्वीकार करता जा रहा हूं.

''लेकिन अब तुम ग़रीब नहीं काका. क्योंकि तुम अब

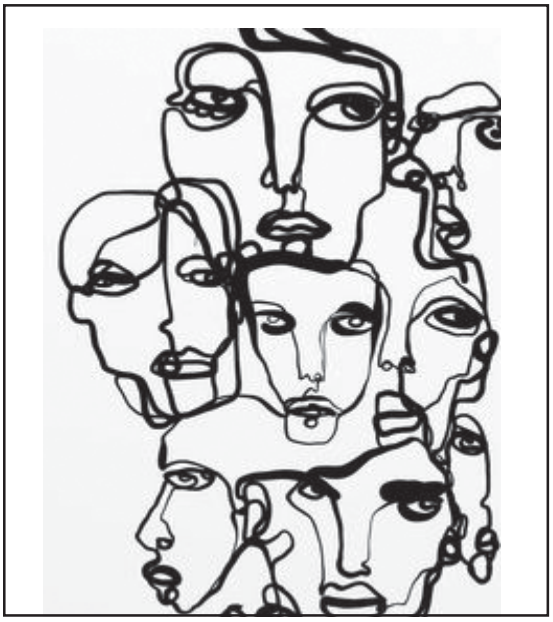

मेरे पास रहोगे.'

''सच!''

''सच!''

तब, मैंने पूरन मोची को अपने साथ विदेश ले जाने के लिए सारे प्रबंध शुरू किए.

मैंने अपने रुतबे, रसूख और जान-पहचान का इस्तेमाल करना आरंभ किया. क्योंकि मैं जानता था, पूरन मोची को विदेश ले जाने के लिए सर्वप्रथम मुझे कुछ औपचारिकताएं पूरी करनी होंगी. ...आख़िर वीजा, एयर-टिकट इत्यादि के बिना कोई विदेश कैसे जा सकता है? पहले होता तो ये अति आवश्यक चीज़ें इकट्ठी करना मेरे लिए असंभव होता. किंतु अब जब मैं सफलता के शिखर पर उपस्थित हूं, यह सब मेरे लिए चुटकियां बजाते हुए पूरे करने वाले कामों जैसा ही था. मैंने तत्काल अपने प्रभाव, प्रतिष्ठा एवं प्रसिद्धि का प्रयोग कर शीघ्रातिशीघ्र सभी आवश्यक औपचारिकताएं पूरी कीं और उसे भी अपने साथ विदेश लेता गया.

स्व. चंद्रबली राय
५४८/१७के/११ के
बेनीगंज (नई बस्ती),
प्रयागराज, उ. प्र.- २११०१६

गीत

शब्द

कल्याणमय आनंद

शब्द में असीम शक्ति होती है,
यह नहीं होता है
केवल वर्णों का मेल
इसका निश्चित अर्थ होता है,
शब्दों का उचित संयोजन
प्रेम सिखाता है,
आशान्वित करता है
विश्वास जगाता है,
मानवीय रिश्तों को
सकारात्मक दृष्टिकोण देता है.
सुरक्षा का एहसास कराता है
यह दूर तलक फैले मरूस्थल में
अमृत की बूंद के समान होता है,
नई उड़ान के लिए
पंख सरीखा होता है
सपनों को पूरा करने का
मार्ग प्रशस्त करता है,
बनकर प्रेरणा पुंज
इतना ही नहीं
शब्द निरंकुश सत्ता को
उखाड़ फेंकने का सामर्थ्य रखता है
घनघोर अंधियारे में भी
दीपक की तरह जगमगाता है,
विध्वंसकारी प्रभंजन को भी
चुनौती दे सकता है.
लेकिन

जब शब्द बिक जाता है, तो
इसके विपरीत हो जाता है
अपना अर्थ और शक्ति खो देता है
बन जाता है
बाज़ार में बिकने वाले
प्रेमरहित शरीर की तरह
जिसमें नहीं होता है
समर्पण, आत्मीयता एवं विश्वास
और करने लगता है
प्रेम तथा बंधुत्व का आहरण,
क्रूरता का महिमामंडन,
जन्म देने लगता है विद्वेष
भटकाने लगता है राह,
रौंद डालता है
करुणा के घरौंदों को,
दमन करने लगता है
शोषित-पीड़ित स्वर को
ऐसे में समाप्त हो जाता है
सत्य-असत्य, न्याय-अन्याय,
चाटुकारिता-आत्मसम्मान,
स्वतंत्रता-परतंत्रता का अंतर
और अंततः हो जाता है
लोकतंत्र का अदृश्य अपहरण.
इसलिए बचाना ज़रूरी है
शब्द को बिकने से
उसके वास्तविक अर्थ के साथ.

१०१, रामचंद्र लोचन वाटिका, मोहनपुर, पुनाईचक,
पटना- २३(बिहार). मो. : ९११३१६६३३५
ईमेल : kalyanmayanand@gmail.com

ख़ुशियों की चाबी

डॉ. अलका अग्रवाल

सेवानिवृत्त प्राचार्य, राजस्थान.
अनेक पत्र पत्रिकाओं में रचना प्रकाशित, आकाशवाणी और दूरदर्शन से भी कविता कहानी प्रसारण.
कविता, कहानी, लघुकथा, आलोचना, पुस्तक समीक्षा, संस्मरण सभी विधाओं में लेखन.
१ कहानी संग्रह, १ लघुकथा संग्रह, २ कविता संग्रह, २ शोध पुस्तकें प्रकाशित.
माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान और कोटा खुला विश्व विद्यालय के स्नातक स्तर के लिए राजनीति विज्ञान में अध्याय लेखन.
सभी विधाओं के साझा संग्रहों में रचना प्रकाशन.
कविता, कहानी और बाल कहानी की अनेक प्रतियोगिताओं में सम्मान व पुरस्कार प्राप्त.
ऑनलाइन लगभग ३०-३५ एकल कार्यक्रम अनेक विधाओं में प्रस्तुत.
बाल साहित्य की ११ पुस्तिकें एवं २ कविता संग्रह, ३ कहानी संग्रह और १ बाल उपन्यास प्रकाशित.

तेज़ धूप और गर्मी से बेहाल रिया ने ताला खोलने के लिए पर्स में हाथ डाला तो उसे चाबी मिली ही नहीं. एक-एक कर सभी जेबें देखने पर भी चाबी का कहीं पता नहीं था. वह सुबह कॉलेज़ जाते समय के घटनाक्रम को दोहराने लगी, जिससे शायद कुछ याद आ जाए. उसने याद किया, सुबह घर से निकलते हुए कॉलेज़ के लिए क्लास के लिए देर हो गयी थी. तब चाबी उसके हाथ में ही थी. जब उसने ऑटो किया था, तब भी उसके हाथ में ही थी. तो शायद उसी ऑटो रिक्शा में रह गयी है, क्योंकि पर्स में तो रखी ही नहीं थी. हे भगवान! इतने बड़े दिल्ली शहर में कहां मिलेगा वह ऑटो रिक्शा. यह तो भूसे के ढेर में सुई ढूंढने जैसा ही काम होगा. क्यों मेरे साथ ही ऐसा होता है? स्वयं को कोसते हुए किंकर्तव्यविमूढ़-सी खड़ी थी रिया धूप में,प्यास से बेहाल और पसीने से तर-बतर. इस समय वह कर भी क्या सकती थी.

अभी इस मकान को लिये सप्ताह भर भी नहीं हुआ था. यहां दिल्ली में बी. ए. के बाद, रिया ने 'ऐड मेकिंग' के कोर्स में प्रवेश ले लिया था. कितने ही मकान देखे, पर सभी में कुछ ना कुछ परेशानी नज़र आयी. अक़्सर एक कमरे वाले फ़्लैट चौथी मंजिल पर थे, जहां लिफ़्ट भी नहीं थी. रिया को इतना चढ़ना-उतरना बिल्कुल पसंद नहीं था. तब उसे यह मकान मिला, जिसमें ग्राउंड फ्लोर पर तीन कमरे थे. रसोई सबकी कॉमन थी, जिसमें मकान मालिक ने गैस, फ्रिज़, आर ओ वग़ैरह लगा कर के दे रखा था.

वहां रहने वाली दोनों किराएदार लड़कियां नौकरी करती थीं, रिया उन्हें

दीदी कहती थी. उसने जो कमरा लिया था उसमें भी पलंग, अलमारी वगैरह सब कुछ था. हालांकि ऐसा लगता था कि कमरे में कुछ सीलन है. पर ब्रोकर ने यह कहकर लीपापोती कर दी थी कि जुलाई में बरसात के कारण थोड़ी बहुत सीलन तो आ ही जाती है. रिया भी मकान देख-देख कर थक चुकी थी और इस मकान का किराया उसके लिए ज़्यादा भी नहीं था, फिर उसके कॉलेज़ से भी यह जगह बहुत दूर नहीं थी और उसमें रहने वाली दोनों लड़कियां भी ठीक ही लग रही थीं. वैसे भी दिल्ली में एक दूसरे के जीवन में ज़्यादा दिलचस्पी किसी को नहीं होती और ना ही अनावश्यक हस्तक्षेप कोई भी पसंद करता है.

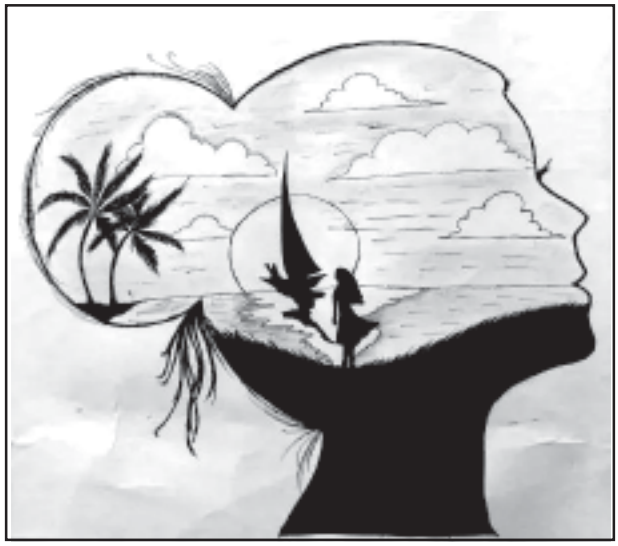

रिया अभी सोच ही रही थी कि क्या करे, अपने छोटे शहर में तो उसने देखा था कि ताले की चाबी बनवा ली जाती है. लेकिन यहां तो उसे कुछ भी पता नहीं, कहां से बुलाए चाबी बनाने वाले को, क्या करे? मकान मालिक को वह बताना नहीं चाहती थी. इस तरह ना तो ताला तुड़वाया जा सकता था, क्योंकि ताला कॉमन था और ना ही नयी चाबी बनवा सकती थी वह. तभी उसे पीछे से पदचाप सुनाई दी. उसने देखा तो आस्था दीदी का खाना बनाने वाली आयी थी, रिया को इस समय वह संकटमोचक नज़र आ रही थी. उसके पास चाबी थी. रिया की जान में जान आयी.

वह उसके साथ ही अंदर चली गयी और अपने कमरे में पानी पीकर लेट गयी. आज उसके कॉलेज़ में अंतिम क्लास नहीं हुई थी, इसलिए वह जल्दी ही आ गयी थी. चलो, 'आज का काम तो हो गया,'...उसने राहत की गहरी सांस लेते हुए सोचा. कल से चाबी का क्या होगा? यही बात उसके दिमाग़ में घूम रही थी. मकान मालिक से भी कैसे कहेगी वह, यह डर भी लग रहा था. घर पर भी कैसे बताए ये बात. उसे तो पहले ही सब लोग लापरवाह कहते हैं.

रिया के पेट में चूहे कूद रहे थे, भूखे रहना उसके लिए असंभव था. इसलिए कैंटीन से पैक कर लाया हुआ, चाऊमीन निकाला. ठंडा पेप्सी निकालकर, लैपटॉप पर कोई फ़िल्म लगाकर, उसने खाना शुरू कर दिया. 'पहले पेट पूजा पीछे काम दूजा' का अनुकरण करते हुए कुछ देर को चाबी की चिंता को चित से हटा कर, खा पी कर लेट गयी रिया.

...पता नहीं, उसके साथ ही इतना उल्टा-पुल्टा क्यों होता है. वह अतीत के गलियारों में पहुंच गयी थी. पिछले साल जब वह दिल्ली के कॉलेज़ से बी. ए. ऑनर्स कर रही थी, हॉस्टल के कमरे से घर से लाया हुआ स्टील का थरमस न जाने कैसे ग़ायब हो गया. अगर उसकी मम्मी वहां होती तो ज़रूर कहती, 'अरे आख़िर गया कहां भई, धरती में समा गया है या आसमान निगल गया.'

उसे भी लगा था कि गधे के सिर से सींग की तरह ऐसे कहां ग़ायब हो गया थरमस. ...और यह कोई अकेली घटना नहीं है. बचपन में भी न जाने कितने लंच बॉक्स, कॉपी, पेन, किताबें, पेंसिल, रबड़ खो जाते थे... कहां जाते थे, पता नहीं. पापा और दीदी उसे लापरवाह कहते हैं. हालांकि उसे बहुत चिढ़ होती है इस बात से.

उसने मन ही मन निश्चित कर लिया कि अब आस्था और अर्चना दीदी से यह पक्का करके कि वे घर पर ही हैं, वह कॉलेज़ से वापस आया करेगी. तब तक कहीं ना कहीं अपना समय बिताएगी. मन ही मन योजना बनाने लगी रिया, लाइब्रेरी, मॉल, विंडो शॉपिंग, पिक्चर हॉल. पर ऐसा कब तक कर पाएगी वह. समस्या का कोई हल नहीं सूझ रहा था उसे. उसे लगा जैसे पूरी दुनिया हमेशा से ही उसकी दुश्मन

बनी हुई है.

उसे याद आया कि कॉलेज़ में कैसे एक लास्ट टेस्ट में उसे ज़ीरो मिला था, जबकि उसे पता है कि इतना बुरा भी नहीं लिखा था उसने कितनी अपसेट हो गयी थी वह उस दिन. कॉलेज़ से आकर उसने खाना भी नहीं खाया था. अपमान, क्रोध और असंतोष के कारण उसका स्वयं पर नियंत्रण ही नहीं रहा था और वह जोर-जोर से रोने लगी थी. आसपास के कमरों से भी कोई नहीं आया था उसे चुप कराने, देर तक रोती ही रही थी वह रोते-रोते ही भूखी ही सो गयी थी उस दिन.

पर दूसरे दिन उसकी शिकायत वार्डन तक अवश्य पहुंच गयी थी और उसके बाद शुरू हो गया था, साइकोलॉजिस्ट से उसकी काउंसलिंग के सेशन का सिलसिला. कितनी बुरी है यह दुनिया, इनको मैं ही मनोरोगी दिखाई देती. रिया का मन सब के प्रति कड़वाहट से भर गया. यही सब सोचते हुए रात के १२:०० बज गए थे. सुबह ९:०० बजे तो क्लास में पहुंचना था... और अभी कुछ प्रोज़ेक्ट वर्क भी करना था. बेमन से उसने काम पूरा किया, तब तक रात के २:०० बज चुके थे.

दूसरे दिन सुबह से ही चाबी खोने के कारण मूड ख़राब था रिया का. वह किसी को बताना नहीं चाहती थी कि उसने चाबी खो दी है. पता नहीं क्या हल निकाल रही थी वह अपने मन में इस समस्या का. पर ताला ना तो लगाना पड़े और ना खोलना पड़े, इसके लिए उसने जल्दी जाने और देर से आने का निश्चय कर लिया था. यहां सब लोगों के बीच में गैर ज़िम्मेदार और लापरवाह की छवि नहीं बनाना चाहती थी वह. घर पर बात करते समय भी उसने कुछ नहीं बताया था. यह बात अलग है कि उसकी मम्मी उसकी आवाज़ से ही समझ गयी थी कि वह परेशान है. पर उसने बहाना बनाकर टाल दिया था.

कॉलेज़ में पूरे दिन ही अनमनी रही रिया. वैसे भी अभी कॉलेज़ में उसकी किसी से घनिष्ठता नहीं थी. शाम को ही एक रेस्तरां से अपना मनपसंद रेड सॉस पास्ता पैक करा लायी थी रिया. खाना हमेशा वह पसंद का और बढ़िया ही खाती थी. बाक़ी और कोई खास़ शौक़ नहीं है उसे. ना तो अपने साथ की अन्य लड़कियों की तरह हर दिन लेटैस्ट फैशन के नए कपड़े ख़रीदने का ना ही गहने पहनने का और कॉस्मेटिक्स ख़रीदने का. पर खाने में कभी कोई समझौता, किसी क़ीमत पर नहीं कर सकती थी.

इस समय वह केवल यह सोच रही थी कि हमेशा से उसके साथ ही बुरा क्यों होता है? उसे हॉस्टल का एक वाकया याद आया, जब उसकी तीनों दोस्त बाहर गयी हुई थीं, ड्रिंक के लिए. उससे भी कितनी ज़िद की थी, उन लोगों ने, पर वह टस से मस नहीं हुई थी. उसे क्लब और ड्रिंक्स में कोई दिलचस्पी नहीं थी. उसके नहीं जाने पर मज़ाक भी उड़ाया था, उन लोगों ने. उसे पिछड़ा हुआ भी कहा था. उसकी सहेलियां ऐसे घरों से आयी थीं, जहां उनके मां-बाप लड़कियों के इतने छोटे कपड़े पहनने और लड़कों के साथ क्लब जाने और शराब पीने के बारे में सोच भी नहीं सकते थे. पर उनकी बेटियों पर समय के साथ क़दम ताल करने का भूत सवार था. वे तो यही जानते थे कि उनकी मेधावी बिटिया दिल्ली के एक नामी कॉलेज़ में पढ़ रही है, जो कालांतर में आई ए एस बनकर उनका ही नहीं, उनके शहर का भी नाम रोशन करने वाली है.

जब भी कभी माता-पिता का फ़ोन आता कितने सलीके से, विनम्रता से, 'प्रणाम पापा, प्रणाम मम्मी' कहती थीं ये सब लड़कियां. ऐसा लगता था कि भारतीय संस्कृति का मूर्तिमान स्वरूप हैं.

परंतु वस्तुस्थिति इसके ठीक विपरीत थी. अपने घर में निषेध और वर्जना के बंधनों में बंधी लड़कियां, स्वतंत्रता पाकर स्वच्छंद हो गयी थीं. ऐसा नहीं था कि हॉस्टल में कठोर अनुशासन नहीं था, लेकिन उसके लिए रास्ते निकाल लिये थे, इन चतुर और बुद्धिमान लड़कियों ने.

उस दिन भी लेट नाइट की अनुमति लेकर गयी थीं, तीनों लड़कियां. लौट कर आयीं तो सभी को चढ़ गयी थी शराब. रिया तो जाग ही रही थी, क्योंकि उसकी रूममेट कविता भी तो गयी हुई थी. उसके आने की आहट से ही उसे भी उत्सुकता हुई, ड्रिंक्स के अनुभव के बारे में. उससे कुछ पूछती, इससे पूर्व ही कविता वॉशरूम की ओर दौड़ी. उसके उल्टी करने की आवाज़ आ रही थी. इसके लिए गयी थीं ये लड़कियां, छी छी.

रिया मन ही मन सोचने लगी. कविता बार-बार उल्टी

करने दौड़ती रही, पर उसकी किसी ने कोई शिकायत नहीं की. पास के कमरे से किसी ने पूछा भी नहीं. अब क्यों कानों में तेल डाल कर बैठी हैं ये शिकायत करने वाली. उसने चिढ़कर सोचा.

बाक़ी बची दोनों लड़कियों ने तो बहुत ही नाटक किया. पीकर बहकना, शायद इसे ही कहते हैं. सपना अपने बॉयफ्रेंड को भला बुरा कह रही थी और उसी मदहोशी में ब्रेकअप करने का निर्णय भी ले चुकी थी. अंजली अपने पापा को भला-बुरा कह रही थी, जो उसकी मम्मी को हमेशा दबाकर रखते हैं. वे राज़ जो इन दोनों ने प्रयत्नपूर्वक अपने मन में दबा रखे थे, कम से कम दोस्तों के सामने प्रकट हो चुके थे. पर इतना हंगामा होने पर भी न तो किसी लड़की ने कुछ कहा और न उन्हें वार्डन ने कुछ कहा. कभी-कभी उसे लगता है, जैसे नियम केवल उसके लिए ही हैं.

...और उस दिन तो कुछ भी नहीं हुआ था ना, रिया ने करवट बदली और जैसे वह दृश्य उसकी आंखों के सम्मुख साकार हो गया. हॉस्टल में सेकंड ईयर में कमरे अलॉट हो रहे थे. उसकी अब तक की रूममेट प्रिया अब उसकी सहेली बन चुकी थी. इसलिए रिया उसके साथ ही कमरा लेना चाहती थी. पता नहीं क्या हुआ अचानक कि रूममेट ने एन समय पर मना कर दिया. कितनी चोट लगी थी रिया के दिल को. उस समय रिया, प्रिया की इस हरकत से बिल्कुल अपसेट हो गयी थी और ग़ुस्से में उसने प्रिया के कमरे के बाहर एक गिलास पानी फैला दिया था. और कॉरिडोर में रखे गमले को भी पैर से गिरा दिया.

रिया ने सुना था कि दीवारों के भी कान होते हैं, पर 'दीवारों के आंखें भी होती हैं,' यह न तो सुना था न देखा था और ना उसने कभी सोचा ही था. और दूसरे ही दिन वार्डन के सम्मुख रिया की पेशी हुई और उसे चेतावनी दी गयी कि वह भविष्य में अनुशासित रहे अन्यथा... ऐसी हरकतों को हॉस्टल में बरदाश्त नहीं किया जाएगा. ख़ून का घूंट पीकर रह गयी थी रिया. वह नहीं चाहती थी कि उसके घर तक बात पहुंच जाए. ग़ुस्से में सोचने लगी, 'जब दूसरी लड़कियां हॉस्टल के कमरे में ही धुआं उड़ाती हैं, तब कहां रहते हैं वार्डन मैडम के गुप्तचर. इनके सीआईडी क्या केवल मेरे लिए ही तैनात हैं. पता नहीं कौन है, जो मेरे पीछे पड़ा हुआ है.' रिया को अब तक भी नहीं पता था. अगले दिन सुबह कॉलेज़ जाते समय रिया ने तैयार होने पर कुछ ज़्यादा ही ध्यान दिया. चटक रंग का टॉप पहना और मैचिंग लिपस्टिक और बिंदी भी लगायी, जिससे उसकी उदासी किसी की भी पकड़ में ना आ पाए. कॉलेज़ में दिन भर नॉर्मल रहने की कोशिश में सफल रही रिया. लंच तो कैंटीन में कर लिया, पर रात के लिए पैक नहीं कराया उसने. मन ही नहीं था खाने का. रिया ने सोचा अगर ज़्यादा भूख लगी तो रात को ही ऑर्डर करके मंगा लेगी.

कॉलेज़ के बाहर ही खड़ी थी रिया. उसका मन चाबी के बारे में ही सोच रहा था. परेशान-सी खड़ी, ऑटो का इंतज़ार कर रही थी. उसने देखा कि एक ऑटो रिक्शा उसी की ओर चला आ रहा है. पर क्यों, उसने तो उसे बुलाया भी नहीं. ऑटो वाले ने उसके पास ही ऑटो रोकते हुए पूछा, 'मैडम दो दिन पहले आप ही बैठी थीं क्या मेरे ऑटो में.'

कुछ सोचते हुए ड्राइवर की शक्ल याद करते हुए बोली रिया, 'हां, मैं ही बैठी थी. क्या मैं चाबी आपके ऑटो में भूल गयी थी?'

ऑटो वाले ने कहा, 'हां दो दिन से इस एरिया की सवारियों को ध्यान से देख रहा हूं. चाबी तो मैंने घर पर रख दी है.'

'क्या चाबी आपके पास है?'

ख़ुशी से उछल उछल पड़ी थी रिया. उसे अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ.

'मैं ले आऊंगा.' ड्राइवर ने कहा.

'घर से कब तक लाकर दे देंगे मुझे.' रिया ने उतावलेपन से पूछा.

ऑटो वाले ने कहा, 'मैं जानता हूं आपको परेशानी हो रही होगी. पर मेरा घर यहां से बहुत दूर है. आज घर जाते ही मैं चाबी ऑटो में रख लूंगा. कल सुबह आते समय ले आऊंगा. ....पर आप फ़ोन नंबर दे दीजिए. मैं सुबह आपको फ़ोन कर दूंगा, आप मेट्रो स्टेशन के बाहर आ जाना. मैं वही मिल जाऊंगा.'

ऐसे भी लोग होते हैं जो दूसरों के लिए इतना सोचते हैं. रिया ड्राइवर की बात से अभिभूत हो गयी थी. जल्दी से

रिया ने अपना फ़ोन नंबर उसे दे दिया और उसी ऑटो में बैठकर मेट्रो स्टेशन तक आ गयी, जाने के लिए.

अब वह ख़ुश थी और निश्चिंत भी. घर आकर वह सोचने लगी कि दिल्ली जैसी जगह में ऐसा भी हो सकता है? किसी को बताओ तो विश्वास ही नहीं कर सकता, एकदम कहानी जैसी बात है. मन के दूसरे कोने ने कहा, 'इतनी ख़ुश मत हो, पहले चाबी हाथ में तो आने दे.'

रिया को विश्वास था, पता नहीं किस आधार पर, पक्का विश्वास कि कल चाबी मिल ही जाएगी उसे. उसने कमरे में पहुंचकर पिज़्ज़ा ऑर्डर किया और बड़े अच्छे मूड में बिस्तर पर लेट गयी. मेरे साथ भी अच्छा होता है, यह सोचकर वह मुस्कुराने लगी.

रिया को याद आया, कॉलेज़ में एक बार क्लास में ही मोबाइल फ़ोन छूट गया था. उसे पूरा विश्वास था कि अब तो नहीं मिलेगा, पर फिर भी मिल ही गया था. तो उसके साथ भी अच्छा होता है. हुआ यह कि जिस लड़की को फ़ोन मिला, उसने फ़ोन से ही मम्मी के नंबर पर बात की और फिर वह हॉस्टल पहुंच गयी मोबाइल देने. यह भी कितना अविश्वसनीय ही तो था. हां, मम्मी की डांट तो ज़रूर खानी पड़ी थी उसे. मम्मी ने नाराज़ होते हुए कहा था तेरी लापरवाही की आदत कभी जाएगी नहीं क्या? कॉलेज़ में आ गयी, पर लापरवाही बच्चों जैसी.

अच्छे लोगों ने उसकी सहायता हमेशा की है. इसी कारण वह अपनी ग़लतियों का दंड भुगतने से कई बार बची है. इस तरह तो पहले कभी सोचा ही नहीं था उसने.

रिया के मन में बैक मार्केट वाले, मोमोज़ वाले का चेहरा कौंध गया. उस दिन हॉस्टल के पीछे की तरफ़ के बाज़ार में अपनी सहेलियों के साथ गयी थी. मोमोज़ ख़रीदते समय उसने अपना छोटा-सा पर्स पता नहीं कब ठेले पर रख दिया और वहीं रखा हुआ भूल गयी. पता ही नहीं चला कि पर्स छूट गया है. दूसरे दिन जब किसी काम के लिए रुपयों की ज़रूरत पड़ी तो पता चला कि पर्स तो नदारद है. रुपयों के साथ ही उसमें डेबिट कार्ड, आधार कार्ड तो था ही और भी कई ज़रूरी कागज़ थे. वह क्लास के बाद सीधे मोमोज़ वाले के पास गयी. पर्स उसी के पास था. रिया की जान में जान आयी. उसने इनाम के रूप में कुछ रुपये दिये, लेकिन उस भले इंसान ने लेने से इन्कार कर दिया....और वह सोच रही थी कि उसके साथ सब बुरा ही होता है.

दो दिन से ढंग से सोयी भी नहीं थी रिया. जब भी कुछ बुरा होता है जीवन में, हमारा नज़रिया ही नकारात्मक हो जाता है. हमें लगता है यह दुनिया बहुत ही बुरी है, सब मेरे दुश्मन हैं. कोई मेरे साथ अच्छा व्यवहार नहीं करता. और जब इसके विपरीत हमारे साथ अच्छा होता है तो लगता है, 'हम व्यर्थ ही सबके प्रति आशंकित रहते हैं दुनिया तो बहुत अच्छी है.' आख़िर रिया भी इस नियम का अपवाद कैसे हो सकती थी. सुबह अच्छी नींद के बाद रिया तरोताज़ा उठी. जल्दी-जल्दी तैयार हो रही थी, तभी मोबाइल की घंटी बजी और वह मेट्रो स्टेशन के लिए रवाना हो गयी.

ऑटो ड्राइवर पहले ही वहां खड़ा था.

उसने रिया को देखते ही जेब से कीं रिंग निकाला. रिया की आंखें अपनी की रिंग देखकर चमकने लगीं. ऑटो चालक ने उसे चाबी देते हुए कहा, 'चाबी संभालकर रखनी चाहिए. हमेशा मिल जाए ऐसा नहीं होता.'

रिया ने ग़लती मानते हुए कृतज्ञता से कहा, 'मैं जानती हूं, दूसरे की चीज़ कौन इतनी संभाल कर रखता है. आप जैसे लोग दिल्ली शहर में सब नहीं हैं.'

रिया मन से कृतज्ञता महसूस कर रही थी. वह उसी ऑटो में कॉलेज़ गयी और रास्ते में एक मिठाई की दुकान से मिठाई ख़रीद कर ऑटो चालक को ज़िद करके दी. वह इतने आत्म सम्मान वाला था कि मिठाई लेने से भी इंकार कर रहा था.

आज रिया बहुत ख़ुश थी. ख़ुशी केवल यह नहीं थी कि उसे अपनी खोयी हुई चाबी मिल गयी थी. पर उसे तो लग रहा था कि उसे जीवन में ख़ुशियों की चाबी मिल गयी थी. उसके साथ बुरा ही नहीं, उसके साथ अच्छा भी होता है, यह उसे समझ में आ गया था. जीवन में धूप छांव की तरह अच्छा-बुरा सबके ही जीवन में होता रहता है... और उसके चेहरे पर मुस्कान खेल रही थी.

B-७, जानकी विहार अपार्टमेंट,
B-१०३, प्रथम तल,
शिव मार्ग, बेनीपार्क,
जयपुर-३०२०१६

प्रथम लघु उपन्यास १९-२० की उम्र में. विविध विधा में लेखन, प्रकाशन.

हंस, ज्ञानोदय, जनसत्ता, लोकमत, विश्व गाथा, लेखनी.नेट के विशेषांकों में कहानियां.

दोनों उपन्यास पुरस्कृत.

अद्यतन : 'हंस सत्ता विमर्श और दलित विशेषांक' के पुस्तक रूप में एक कहानी.

'सरई के फूल' कथा संग्रह, हिन्द युग्म से.

'रास्ते बंद नहीं होते', लघुकथा संग्रह (इंडिया नेटबुक्स) से.

डायमंड बुक्स कथामाला के अंतर्गत की '२१ नारी मन की कहानियां, (झारखंड)' का संपादन.

कोलतार की तपती सड़क पर

अनीता रश्मि

जिरगी ने अपने गले में तांबे के सिक्के से गुंथे हार को डाला और ताखे पर रखे टूटे शीशे के टुकड़े में अपना गला निहारने लगी.

दो दिन पहले ही कजरा के छेड़छाड़ के चलते शीशा गिरकर टूट गया था. काले धागे में गुंथे सिक्कों के तांबई लालपन को गौर से देखते हुए अपने काले गर्दन को वह भूल ही बैठी. नौलखा हार पहनने की ख़ुशी उसकी आंखों से छलक पड़ी. माथे की ओर शीशे को ले गयी, तो टूटे शीशे में आधा ललाट, एक आंख, थोड़ी-सी नाक खिलखिला उठी. कान की ओर घुमाया, कान में खुंसी जौ की नयी बालियों के हरापन लिये हुए पीलेपन ने सुप्रभात कहा. तिरछे जूड़े में लाल उड़हुल, चंद पत्ते भी बड़ी उदारता से मुस्कुरा दिए.

शीशे को ललाट के बीच में ला वह चमकीली बिंदी देखने लगी. इस बीच उसके होंठों पर एक प्यारी-सी मुस्कान फंसी पड़ी थी. उस मुस्कान के साथ नाक की चांदी की लौंग भी हंसी. लाल पाड़ की उजली साड़ी में वह बेहद ख़ूबसूरत लग रही है, उसे एहसास है.

कल ही सूरज बाबा और धरती मईया के विवाह के पर्व सरहुल के तीसरे दिन पाहन ने फूलखोंसी किया था. पाहन काली ने घर-घर जाकर सरई फूल खोंसकर आशीर्वाद की बरसा की थी. युवकों के कानों में भी सरई (शाल) पुष्प खोंसा था और जनीमन के अंचरा में भी दिया था.

'सरहुल परब में सफ़ेद सखुआ फूल, गाछ सबका मान बढ़ जाता है रे.' - माय बचपन से ही बताती थी. अब तो वह ख़ुद भी देखती है.

पहले दिन चैत महीना के उजेरिया के तीसरे दिन से सुरू परब में साल गाछ के नीचे सरना में दो घड़े में पाहन ने पानी भरकर ढंक दिया था. दूसरे दिन ढक्कन हटाया था. पानी एकदम कम नहीं हुआ, तो घोषणा कर दी,

'इस बेर चिंता करने का बाइत नय है. इस बेर जमकर बरसा होगा.'

सब आगत की ख़ुशी से मदमस्त.

'इस बेर खेती अच्छा होगा.'

चारों दिशाओं में जैसे गूंज रहा था.

ऐसे भी धरती की बेटी बिंदी के पाताल लोक से आने की प्रसन्नता और नए फल, फूल, फसल के तैयार हो जाने के उपलक्ष्य में मनाया जानेवाला सरहुल सब प्रकृति पूजकों में उन्माद भरता है... रबी फसल के बाद धरती की संतान गाछ-बिरिछ, फूइर-पात, फल से ढंकने पर मनाया जानेवाला अद्भुत वसंतोत्सव. गाछ, बिरिछ धरती और सूरज की संतान ही तो है. दोनों के ब्याह से उत्पन्न.

बिंदी साल में एक ही बार पृथ्वी पर आती है... चैत में. लोककथा में छिपी है धरती माय और सूरज बाबा की बहुत सुंदर बेटी बिंदी की कहानी. सात नदी के किनारे कमल फूल तोड़ने गयी बिंदी डूब गयी थी. उदास धरती माय के कारण बरसात बंद... नदी-नल्ला सूख गया...गाछ, बिरिछ, घास सब मुरझा गया...काफ़ी मिन्नतों के बाद यमराज राजी कि साल में एक बार आधे साल के लिए बिंदी को लौटाएंगे...तब से वह आती है पृथबी पर.

उसके आने से धरती पर बहार आती है. बस, मनने लगा परब... सरहुल परब कुडुख समुदाय में.

वह बचपन से ई किस्सा सुनती रही है.

कजरा के साथ तो उसकी जिरगी थी. वह अपने कजरा के साथ ख़ूब नाची-गायी थी. अब तक मांदर की थाप पर कजरा के साथ थिरकते पैरों की याद बाक़ी है. गीत के बोल भी —

फूल गेला वन में,
सरई फूल,
चरका दिसयं,
चरका-चरका (श्वेत).

सरई फूल (सखुआ के फूल) से भर जाता है वन... और सरना स्थल! सरहुल की पूजा ख़त्म होने के बाद नयी सब्ज़ियां बनी थीं. सबने पहली बार इकट्ठे सरना स्थल पर ही चखा था नयी फ़सल का उपहार. पूजा से पहले खाना वर्जित. सब गांववाले कड़ाई से पालन भी करते. आजकल बढ़हर फल कम मिलता है यहां. पर उसको भी सब पूजा के बाद ही खाते थे. इस बेर उसकी भी सब्ज़ी बनी थी. हर परब में गुलगुला, पीठा, गुड़ पुआ, धुसका, बर्रा जैसे पकवान उसके घर पर भी बनते थे. खासकर जब आजा थे.

अभी सरना झंडे अपनी उजर-लाल पट्टियों की आभा के साथ पूरे परिसर को घेरे हुए लहरा रहे थे.

और जिरगी को घेरे हुए था, कजरा का समर्पित प्यार. पिछले चार-पांच दिनों से उसके हाथ-पैरों, कमर में लोच भर गयी थी. कल उसने हड़िया जी भर कर पी थी, अब तक खुमार बाक़ी. हड़िया को दोने के कोर से पीते हुए गुपचुप कजरा को देखे जा रही थी, ख़ूब-ख़ूब बतिया भी रही थी. अचानक जिरगी की हंसी खनकती चूड़ियों में बदल गयी. कजरा ने पूछा था,

'हमारे साथ बिहा करोगी?'

कुहनी से टहोका दे शर्माकर पूछा था जिरगी ने - 'हमारे संग बिहा? काहे?'

'तोंय हमको बड़ी बेस लगती है.'

चूड़ियों सी उन्मुक्त हंसी उस समय भी गूंजी थी... हर द्वंद्व, लिहाज से परे खिलखिलाती हंसी. धरती और सूरज बाबा के ब्याह के परब के बखत कजरा का यह पूछना कि हमारे साथ बिहा करोगी, जिरगी को उत्साह से नहला गया था.

'अगे जिरगी, कहां मर गयी? जलदी आओ.'

'का है? काहे बुलाई?'

'आइज काम पर नय जाएगी का?'

'आज सरहुल बीतले एके दिन हुआ ना, फूलखोंसी हो गया कल. अब कल से जाएंगे.'

माय को आश्वस्त कर वह घर के कामों में उलझ गयी. शाम को फिर अखरा में मांदर की थाप गूंजी. नसों में थिरकन बन उतरा नृत्य सबको अखरा की ओर खींच ले गया. वह भी कजरा की पांचों उंगलियां में अपनी उंगलियां फंसा झूमर में व्यस्त. रात ढले तक सब लोग रास-रंग में सराबोर!

फिर थक-हार कर सब इधर-उधर लुढ़क गये. कुत्ते एक लय में भूंक कर पूरे गांव को कंपकंपा गये. रात भर कुत्तों का गीत चलता रहा. कहीं से चिरई फड़फड़ायी तो कहीं तोते उड़कर एक डाल से दूसरी पर जा बैठे. सियार की

हुआं-हुआं से भी कोई नहीं जगा. भिनसरे किरण फूटते ही अलसाए लोग कसमसाए. जिरगी धीरे से उठी, कजरा के गालों को हौले से छुआ.

'उइठ. आइज तो जाय पड़ेगा.'

वह कुनमुना कर करवट बदलने लगा. वह रात को पहनी गयी ज़रीदार पीली धोती, गुलाबी कमीज़ और डोरिया गमछे में ही सोया पड़ा था. गेंदे के फूल का पीला हार उसके गले के एक तरफ लटक आया था.

'उइठ कजरा. एते मत अलसा रे!'

उसने मुर्झाया हार खींचा. फिर बाहर निकल गयी.

अहरा के पास पाकड़ गाछ के पीछे फारिग हो, सामने ही उदंड से खड़े अमरूद गाछ से डंठल तोड़ दातुन करने लगी. तभी कजरा आ पहुंचा. अधिकांश लोग जग चुके थे.

'आज का बात? तुम एकदम रानी लखे दिख रही है.'

मन में भी मांदर बज उठा. ढोलक की थाप भी.

'और तुम राजा लखे (जैसे).'

दोनों की चुहुलबाजी से किसी को कोई एतराज नहीं था.

ठेकेदार की आज्ञा थी कि पत्थर की लकीर - 'सब नौ बजे से पहले हाजिर रहा करो.'

सब तैयारी में व्यस्त थे. कोलतार की आधी बनी तपती सड़क उनका इंतज़ार कर रही थी. पहले आधा गांव खेतिहर मज़दूर था. आधे गांव के पास अपने खेत थे. तीन साल के अकाल ने उनसे उनके खेत झपट लिये. उन लोगों की ज़मीन ख़रीदने-बेचने पर रोक लगने के बाद भी खेत औने-पौने में बिके. कुछ लोगों के बुज़ुर्ग तो पहले ही दारू की चंद बोतलों के बदले ज़मीन बेच चुके थे. मालिक मज़दूर बन अपने ही खेत में खटने लगे. कितने मज़दूर पलायन कर गए. पंजाब, गुजरात, मुंबई, दिल्ली ने कइयों को पनाह दी.

अधिकांश शहर में ही विभिन्न प्रतिष्ठान... होटल, कपड़े की दुकान, राशन, चाय-पानी की दुकान तथा अन्य जगहों की शोभा बन गए.

विभिन्न कठोर कामों ने पूरी उदारता से उन्हें अपना लिया. पत्थर तोड़ने से लेकर भवन बनाने, बालू ढोने, छड़ ढोने तक में उनका 'सार्थक उपयोग' होने लगा. ठेलेवाला से लेकर रिक्शा चालक तक बन सब जीवन गाड़ी खींचे लिये जा रहे थे. ये और इन जैसे लोग हैं, तो हम हैं, बड़ी शिद्दत से महसूस किया गया. पहले से भी जियादा. बहुत सारे 'फालतू' लोग सड़क निर्माण में जुट गए. कजरा और जिरगी भी. कोलतार की सड़क पर जीवन तपते कोलतार-सा बह रहा था.

साढ़े आठ बजते ही पगडंडी पारकर सब मज़दूर शहर की छाती रौंदने चल पड़े. भर रास्ते सरई, पलाश, सेमल, कुसुम की बहार! गुलमोहर नहीं खिला था अब तक. लेकिन बस, अब खिलखिलाने को बेचैन! महुआ पेड़ के नीचे महुआ की मदमाती, नशीली गंध फैली थी. सब बिछने में लगे थे. एकाएक कजरा ने पूछा, 'खैनी है? दे ना.'

ब्लाउज़ में खोंसे डब्बे से खैनी निकाली जिरगी ने और कजरा की ओर बढ़ाया. वे दोनों एक ही साइकिल पर शहर की तरफ़ बढ़ रहे थे. साथ में डोरिया थैली में भात, दाल जैसा पानी या पानी जैसी दाल, बारी में उगाया भतुआ का साग, रामतोरई की सब्ज़ी, पियाज का आधा टुकड़ा और दो हरी मिर्च टिफ़िन कैरियर में क़ैद थीं. साइकिल से उतरकर, कजरा साइकिल को एक महुआ गाछ के तने से टिकाकर, खैनी बनाने लगा. डाढ़ के नीचे दोनों ने खैनी दबाया और अपनी सवारी पर सवार. साइकिल हवा से बातें करने लगी. हवा की गुदगुदी से फिर चूड़ियों की खनक हवा में घुलने लगी. जिरगी ने कजरा की कमर को घेरकर पकड़ लिया. अब फिजाओं में दोनों की हंसी थी... हम थे, तुम थे और शमां रंगीन, समझ गए ना.

उन्होंने जानबूझकर पलाश वन वाला रास्ता पकड़ा. उधर से आते हुए राह लंबी हो जाती है तो साथ का मजा चौगुना. वे अक्सर पलाश के दहकते वन के बीच से गुज़रते. हां, सुबरनरेखा (स्वर्णरेखा) नदी भी तो बीच राह में पड़ती है. वहां उतरकर जिरगी बालू में सावधानी से पैर धरते हुए पैदल ही कजरा के साइकिल के साथ चलती है.. अब तो सुबरनरेखा नदी में भी कहां जादा पानी भेंटाता है. लेकिन कजरा के साथ उसका मन भीग-भीग जाता है... एकदमे सराबोर! उसे पता है, कभी इस नदी में सोना मिलता था. पर अब बालू धूप में सोना जैसा चमककर धोखा देता है. वह आज भी उस बालू में धंसकर चलते हुए ख़ूब ख़ुश.

'ठेकेदार के गाली खा लेंगे. ऐसे भी ऊ 'हारो तो हुरो, जीतो तो थुरो'...(हर हाल में दोष देना).'

हंसे दोनों और नदी के दूसरे पाट पर पहुंच साइकिल पर सवार हो हवा से बातें करने लगे.

घाम (धूप) था कि बढ़ता ही जा रहा था. वे साइट पर पहुंचे, उससे पहले ही पत्थरों के चूल्हे पर कोलतार गरम करने की तैयारी हो चुकी थी. नीम, बरगद, गुलमोहर, अमड़ा गाछ के नीचे साइकिलों, लाल-पियर कपड़ों के मेले लगने लगे थे. थोड़ी देर में जिरगी, कमलिया, बसंती, सोनवा तसले में भर-भर कर गिट्टी लाने लगी.. क़जरा आग के ललहुन पीले रंग में गिट्टी का काला रंग घोल रहा था. उसके साथ मथुरा भी था उनके खुले बदन से गले में बंधी ताबीज को भिगोती पसीने की धार ख़ुशबू की तरह बिखर रही थी. गिट्टी उड़ेलने के बाद काम के बीच भी जिरगी, सोनवा बतियाये जा रही थी.

'आइज बेटा को नय लाई सोनवा?'

'कैसे लानते छउआ को, उसको बुखार है. अफीम चटाकर सुला रखे. बूढ़ी देखेगी.'

उसकी बूढ़ी सास अस्सी बरस खटती रही थी. अब नहीं खटने पारती है. घर पर थी वह. इसीलिए सोनवा निश्चिंत हो मज़दूरी करने आ पहुंची, जिरगी को समझते देर नहीं लगी.

गुना अपने छउआ को बड़ गाछ के नीचे चादर बिछाकर सुला आयी थी. अचानक वह चीख़ कर रोया. रोते देख गुना दौड़ी.

दुदमुंहा चींटियों के काटने से चीख़ पड़ा था. कभी चींटी काट लेती, तो कभी कीड़ा, जब ऐसे ही सब अपने बच्चों को पेड़ के नीचे सुलाकर काम में भिड़ जातीं. कभी-कभार अफीम चटाकर भी. जगे रहने पर पीठ पर शाल से बेतरा में बांध काम करती रहतीं सब. थोड़ी-सी देर में गुना अपने बच्चे की भूख़, तकलीफ़ और स्नेह की प्यास शांत कर वापस लौट आयी. सब जुटी थीं, सब लौटीं. जिरगी भी. पर पहले जिरगी ने अपनी चादर से दो पेड़ के बीच झूला बनाकर बच्चे को उसमें लिटा दिया. वैसे भी जिरगी सबकी मदद के लिए सबसे आगे रहती थी.

गुना और सोनवा भी जिरगी के गांव की ही थीं. सोनवा को चार, गुना को पांच बच्चे थे. सब भगवान की कृपा से. गुना अपनी तीन बेटियों ओर एक बेटा को सरकारी स्कूल में पढ़ा रही थी. सोनवा के भी तीनों छउआ वहीं पढ़ रहे थे. मिड डे मील भी बड़ा लालच. वैसे पढ़ा-लिखाकर अपने छउआ-पुता को आदमी जइसन बनाने की लालसा भी पूरे गांव में पसर चुकी थी. सब इसके लिए और भी खटने को तत्पर. किसी भी तरह वे सब अपने बच्चों को आदमी जइसन बना कर अच्छी नौकरी में लगे देखना चाहती थीं. पांच महीने के छोटका छउआ को सोनवा अपने बेतरा में बांध यहां ले आती. पीठ के बेतरा में वह हुलसते रहता, वह काम में व्यस्त रहती. सो जाने पर वहीं किसी गाछ के नीचे चादर बिछाकर सुता देती. गुना भी अपने बच्चे को वहीं बगल में सुता गिट्टी, बालू में उलझी रहती.

अभी बच्चे को दुबारा सुलाने के बाद अब फिर तसला था, गिट्टी थी, आग थी, गर्म होता काला कोलतार था, लहकते सूरज बाबा थे. पसीनों की सौंधी गंध भी थी. जिरगी के साथ कइयों की हंसी थी. और थी, बनी-अधबनी सर्पिल सड़क. दूसरी तरफ़ फर्राटा भरते, नयी बनी सड़क के कोलतार से अपनापा जोड़ते वाहन. अचानक सामने से एक स्विफ्ट को आते देख जिरगी की चूड़ी खनकी.

'देइख ना, देइख, दारू पीकर झूमते हुए गाड़ी आ रहा है.'

स्विफ्ट रुकी. एक परेशान पुरुष चेहरा झांका.

'यहां कहीं गाड़ी बनानेवाला मिलेगा?'

'हिंया तो नय, आगे एक ठो दुकान है.'

सुकरा आगे बढ़ा. और सब भी देख रहे थे.

'कोई एक साथ चलो न. किसी मैकेनिक को लाना होगा.'

'अभी? साब, अभी तो काम है.' पसीना पोंछते हुए कजरा बोला - 'सुकरा, तोंय (तुम) जा.'

जिरगी ने गाड़ी के अंदर झांका. तीन लोग. एक महिला आगे की सीट पर रूमाल से हवा करती हुई. पीछे की सीट पर दो बच्चे.

'तुम तीनों यहीं रुको, मैं आता हूं.'

'ठीक है. जल्दी आना. इतनी गर्मी में हम कोलतार के बीच तो भुन जाएंगे.'

'गाड़ी में घूमे से एतना गरमी छटक रहा है, सड़क पर चलतय तो...'

लघुकथा

आज़ादी

कृष्णा अग्निहोत्री

कमला का कमरा डॉ. ने बदला तो सामने से दृश्य भी बदल गये.

कमला ने देखा कि एक व्यक्ति सफ़ेद कबूतर को सामने की छत पर पिंजरे से बाहर कर दाना डाल चला गया. पास ही उसने पानी भी रख दिया. कबूतर पिंजरे से बाहर फुदकता निकला ही था कि कई अन्य कबूतर जंगली भी वहां आ उसके साथ दाना-पानी का स्वाद लेने गे. सफ़ेद कबूतर कुछ ही देर में कबूतर पास आ पिंजरे में स्वयं ही बैठ गया.

तभी एक जंगली कबूतर ने पूछा, 'भाई तुम खाना अच्छा खाते हो हम भी उसका बंटवारा कर लेते हैं. पर तुम तो पुनः पिंजरे में जा बैठे हो. हम तो यहां मस्ती से उड़ते घूम रहे हैं.

- देखों भाई! मैं यहां मस्त हूं. घर के बच्चे हमें दुलारते हैं. हाथों से दाना-पानी देतेहैं. मुझे बिल्ली का भी डर नहीं. वे लोग मुझे स्वयं ही छत पर गूमने देते हैं तब मैं पिंजरे में सुरक्षित रह सारी सुविधाएं क्यों ने भोगूं.

आप सब तो यदा-कदा दाना-पानी भी नहीं खा पाते. आकाश में ऊंचे उड़ धूप पानी में भीग उड़ते कहीं किसी दीवार के नीचे बैठते हो और तुम्हें तो कोई भी मार सकता है.

तब सोचो कौन ख़ुशहाल है.

- हम! हम किसी के गुलाम भी नहीं. उड़े, कहीं भी दाना चुगे और मस्त हो कबूतरनी के साथ खेलो चोंचे भिड़ाओ.

- पर कोई भी आपको उड़ते ही में मार भूनकर खा सकता है?

- ठीक है. आज़ादी की क़ीमत तो कभी भी चुकानी पड़ती है न! अभी तो हम आज़ाद हैं और तुम गुलाम. वे सब पर फड़फड़ा आकाश में ऊंची उड़ानें भरने लगे और पिंजरे में बैठे कबूतर उदास हो कभी अपने पिंजरे की सलाखों को तो भी गुज़रते राहगीरों ही को देख संतोष कर उदास रहता.

५३२–ए, आईए महालक्ष्मी नगर, इंदौर (म.प्र.)

जिरगी बोलते ही चुप भी हो गयी. बेलचा से कोलतार-गिट्टी को एकसार करने, एक ड्रम में कोलतार उबालने का काम जारी था.

जिरगी से नहीं रहा गया.

'मेमसाब, बाहर आइए, एकदम ठंडा हवा लगेगा. उस चट्टान पर बैठिए ना.'

उन्हें बात जंची. थोड़ी सी देर में तीनों पलाश गाछ की छांव तले चट्टान पर जम गए. पास ही थी पुटुश की घनी झाड़ी, गुलाबी फूलों से लदी. बीच में झांकते, काले, पके फलों के गुच्छे... मोती के काले दानों जैसे. वे तीनों गौर से देखने लगे.

'ई फर बड़ी बेस है. हमीन सब खाते हैं. खाइएगा?'

वह दो-चार गुच्छों को छुड़ा, मोती से काले, छोटे फलों को हथेली में भरकर लेती आयी.

'नहीं-नहीं! फेंक दो. जहर-वहर...'

मेमसाब की लगभग झिड़की से वह खिलखिला उठी.

'ख़ूब अच्छा लगता है. खाने के बाद ना जानिएगा.'

फलों को मुंह में चुभलाती वह फिर चैत्र की तपती दुपहरी का हिस्सा बन गयी. थोड़ी देर बैठने के बाद मेमसाब उठ खड़ी हुईं. साथ ही दोनों बच्चों को भी इशारा किया. एसी कमरों में रहने, एसी गाड़ियों में घूमने, एसी माल में खरीदारी करने, एसी हाल में मूवी देखने की आदी मेमसाब तथा बच्चों को याने

पूरी फैमिली को वहां की धूप-हवा रास नहीं आ रही थी.

'बहुत गर्मी है, बहुत गर्मी है. और नहीं झेल सकती मैं.' कहती हुई वे आगे बढ़ गयीं. बच्चे भी गाड़ी की ओर बढ़े. एकाएक उनकी निग़ाहें जिरगी पर पड़ी. आग के पास खड़ी वह माथे पर भारी तसला थामे चूड़ियां खनखनाए जा रही थी. उस खनखनाहट से उसके दांत मोती से चमक रहे थे. आग की पीली-लाल लपलपाहट से बेपरवाह.

उसको इस तरह इत्मीनान से हंसते देख मेमसाब पहले तो एकटक देखती रह गयीं. फिर चूड़ियों-सी खनकती हंसी ने उनके तन-बदन में आग लगा दी. सामने सवेरे से महुआ बिछती कुछ लड़कियां, बच्चे, औरतें अपनी मौनी, दौरी में महुआ के ढेर से महुआ उठाकर रख रही थीं. मेम साहब ने उधर मुंह फेर लिया. थोड़ी देर में मैकनिक को लेकर साहब हाज़िर! देखा, अभी भी मज़दूर अपने काम में व्यस्त हैं. आग की लपलपाती जीभों पर कोलतार का ड्रम चढ़ा है. पिघला कोलतार सड़क पर उड़ेला जा रहा है. जिधर रोड तैयार था और भी तपन थी. ख़ूब चमक रहा था नया-नया कोलतार... नया रोड... तीखी धूप से धुला हुआ. एकदम सहज-सरल मज़दूरों में से मीठे गलेवाले बंदी की आवाज़ फिजां में लहरायी —

महुआ रे...महुआ पत्तई
महुआ पत्तई सोये झाईर गेल रे
डारी में खोंस लगे खोंचा में फूल रे
फूल कीरे धरती सोभय रे.

महुआ की टोकरी सर पर थामे एक पंक्ति में लौटती लड़कियों की टोली आगे बढ़ती गयी तो जिरगी को वे दिन याद आए.

कभी जिरगी भी अपने गांव-वन में ऐसे ही महुआ चुनती थी. पर कितनी कम कमाई होती थी.

क्या नहीं किया उसने! बाबा गया तो उतनी कम उम्र में भी श्मशान से जला हुआ कोयला उठाकर लाती और बाज़ार में बेचकर घर की खर्ची चलाती थी. माय दूसर के खेत में खटती थी. कुछ सालों तक दलाल के चक्कर में पड़ जिरगी अधिक कमाने के लालच में महानगर में खो भी गयी थी.

वह तो आंगनबाड़ी और सहिया की सखियों से भेद खुला था और किसी तरह उसे वापस गांव लाया गया था. दलाल आज भले जेहल की हवा खा रहा है पर जिरगी वो दिन कभी नहीं भूली. समय से कजरा मिल गया, नय तो उसका भगबाने मालिक था.

उसका आजा (दादा) भी तो आपन जवानी में ही आपन ज़मीन चार बोतल दारू की भेंट चढ़ा आया था. तब से घर में जैसे दलिदर घुस गया था.

अब जिरगी और कजरा भरपूर मेहनत कर अपनी ज़िंदगी को नया रूप देना चाहते हैं. बिहा से पहले थोड़ी ज़मीन ख़रीदने का ख़्वाब जवां हो चुका है. उन्हें विश्वास है-

'ख़्वाब पूरा होगा.'

'और तभी बिहा करेंगे.'

'एक बाइत आउर, हामर छउआ को अफीम का गंध भी नय लगने देंगे.'

साइकिल की घंटी की टुन-टुन के बीच रास्ते में की गयी बतकही उसे याद आ गयी.

❐

कुछ देर की मशक्कत के बाद गाड़ी ठीक हो गयी. चारों पसीना पोंछते हुए गाड़ी पर सवार हो गए. इतनी देर में ही उनके हैंकी भीग गए थे. गाड़ी आगे बढ़ी.

फिर तेज़ गति से छू-मंतर.

'हुंह!.. बहुत गरमी हय... बहुत गरमी हय.'

गाड़ी के अंदर की ठंडी हवा को चिढ़ाता हुआ हंसमुख मथुरा का स्वर था यह.

जोशीले कजरा और जिरगी के होठों पर फिर से हंसी के फूल खिल उठे.

कजरा को हंसती हुई अपनी जिरगी एकदम धरती की तरह लगी... सब कुछ सहकर भी...

'धरती के साथ आकाश का बिहा...!' - उसके होंठों पर बुदबुदाहट.

फिर वह टिन के चदरा पर गिट्टी में गर्म कोलतार मिलाकर, उसे एकसार करने में व्यस्त हो गया. युवा सूर्य को इनसे रश्क...वह और तपने लगा.

१ सी, डी ब्लॉक,
सत्यभामा ग्रैंड, कुसई,
डोरंडा, रांची -८३४ (झा. खं)
ईमेल : rashmianita25@gmsil.com

हरे कांच की चूड़ियां

डॉ. पूरन सिंह

जन्म : १० जुलाई, १९६४; (मैनपुरी उ. प्र.). शिक्षा : एम. ए. (अंग्रेजी-हिन्दी) 'सत्तरोत्तरी हिन्दी कहानियों में नारी' विषय पर पी.एच.डी.

शुभांगी और एकांश की जब शादी हुई थी तब शुभांगी नौकरी नहीं करती थी. एकांश नौकरी करता था. अच्छे पद पर था. उसी ने भाग दौड़ करके शुभांगी की भी नौकरी लगवा ली थी. तब आज जैसा नहीं था कि नौकरियों के लिए आवेदन ही न होते हों. तब ख़ूब नौकरियों के लिए अखबार भरे रहते थे.

जब शादी हुई थी तब वे दोनों एक कमरे के घर में किराये पर रहते थे. नौकरी के बाद थोड़ा-सा अच्छा घर किराये पर ले लिया और वहीं एक बेटा और एक बेटी के मां-पिता भी बने दोनों.

समय भागा, मानो दौड़ा हो. दोनों बच्चे मेहनती निकले और आज दोनों ही बहुत बड़ी-बड़ी कंपनियों में नौकरी करते हैं. सरकारी नौकरी के लिए बच्चों ने साफ़ मना कर दिया.

चारों की नौकरी से घर में संपन्नता आयी तो सबने मिलकर बहुत सुंदर-सा बड़ा घर बनवाया जिसमें आजकल की सभी सुविधाएं हैं. कोई देखे तो कहे कि इतना सुंदर घर भी होता है.

शुभांगी और एकांश अब जीवन के दूसरे छोर पर हैं. उनमें बहुत प्यार रहा लेकिन... लेकिन पिछले तीन साल से उनके प्यार को मानो ग्रहण लग गया हो.

तभी एक दिन...

शुभांगी ने एकांश को एक लगभग जवान महिला के साथ घर से मोबाइल पर बातें करते सुन लिया था. महिला एकांश के ऑफ़िस की ही थी. एकांश शुरू से ही विनम्र और सहज रहा है. किसी से भी घुलने-मिलने में उसे बहुत कम समय लगता है. देखने में इस उम्र में भी बहुत सुंदर हैं.

डॉ. पूरन सिंह

कृतियां : लगभग सभी छोटी, बड़ी और स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में कहानियां, लघुकथाएं, कविताएं, लेख आदि प्रकाशित।

पुरस्कार/सम्मान : विभिन्न प्रतिष्ठित साहित्यिक संस्थाओं द्वारा अनेक सम्मान और पुरस्कार।
हिन्दी अकादमी दिल्ली द्वारा कहानी नरेशा की अम्मा उर्फ भजोरिया पर श्रीरामसेंटर दिल्ली में नाट्य मंचन का आयोजन

प्रकाशन : ६ कहानी संग्रह - पथराई आंखों के सपने, साजिश, मज़बूर, पिंजड़ा, हवा का रुख . और रिश्ते तथा ७ लघुकथा **संग्रह -** महावर, वचन, सुराही, दिदिया, इंतजार, १०० लघुकथाओं का संग्रह तथा ६४ दलित लघुकथाएं एवं कविता संग्रह - विद्रोह प्रकाशित.
कविता संग्रह-वृंदा तथा कहानी संग्रह १८ कहानियां, १८ कहानीकार तथा व्यथा का संपादन.
एक कहानी संग्रह एक कविता संग्रह और एक लघुकथा संग्रह प्रकाशनाधीन.
विभिन्न रचनाएं पुरष्कृत एवं आकाशवाणी से प्रसारण.
लघुकथाओं, कहानियों और कविताओं आदि में निरंतर लेखन.
उड़िया/मराठी/पंजाबी/बंगला/उर्दू/अंग्रेज़ी आदि में विभिन्न रचनाओं का अनुवाद प्रकाशित.

संप्रति : वित्त मंत्रालय, भारत सरकार में प्रथम श्रेणी अधिकारी.

महिलाएं उसे सहज अपना मान लेती हैं. उसकी निश्चलता और विनम्रता उसे औरों से अलग बनाती है, उस ऑफ़िस की महिला से प्यार से बातें करने को तो सहन कर लिया था शुभांगी ने लेकिन जब एकांश के मोबाइल में एकांश को उसके साथ फ़ोटो में देखा तो रह न सकी. बस मन ही मन कुढ़ने लगी और बजाय एकांश से पूछने के उसकी जासूसी शुरू कर दी थी. स्थिति यहां तक आयी कि दोनों में दूरियां होने लगीं. घर में कलह का साम्राज्य छा गया जिसका प्रभाव पहले तो बच्चों पर पड़ा और होते-होते स्थिति यहां तक पहुंची कि दोनों में बातचीत बिलकुल बंद हो गयी थी.

बच्चों ने एक दिन जब अपने पिता से पूछा, 'पापा सच क्या है?'

'सच यही है कि मैं निर्दोष हूं. रही बात तुम्हारी मां की तो जिनके विश्वास कमज़ोर होते हैं वहां प्यार की उम्मीद करना बेइमानी है, बेमानी है. फिर भी तुम ज़िद कर रहे हो तो सुनो. जिस लड़की से तुम्हारी मां मुझे जोड़ रही है वह शादीशुदा है. उसका बहुत सुंदर पति है और एक बच्चा भी. रही बात मेरी तो मेरे साथ कितनी लड़कियां और औरतें फ़ोटो कराती हैं. क्या सभी के साथ मेरे संबंध हो जाएंगे. मेरे ऑफ़िस के लोग तो मुझे विजय माल्या कहते हैं.' फिर हंसकर बोले थे, 'अब तुम्हारे पापा इतने सुंदर हैं तो इसमें उनका क्या दोष?'

दोनों बच्चों को पापा की बात पर कितना विश्वास आया था कितना नहीं, ये तो वही जानें लेकिन बच्चों ने न तो एकांश से बोलना बंद किया और न ही प्यार करना. लेकिन... लेकिन शुभांगी का शक बढ़ता गया और धीरे-धीरे उसकी जगह अहंकार ने ले ली. वही शुभांगी जो एकांश की हर बात मानती थी, अब हर बात का विरोध करने लगी थी और वैसे भी, जहां अहंकार होता है वहां कुछ भी टिक नहीं सकता तो फिर उन दोनों का प्यार कैसे टिकता?

आख़िर वह दिन भी आया जब शुभांगी ने एकांश से स्पष्ट कह दिया, 'आज से मुझे तुमसे कोई लेना देना नहीं. मुझसे किसी भी बात की कोई उम्मीद न रखना. खाने पीने से लेकर कपड़े धोने और सोने से लेकर...'

'अब इस उम्र में ये सब ठीक रहेगा.' एकांश ने कहा तो शुभांगी ने साफ़ कह दिया था, 'नई-नई लड़कियों के साथ फ़ोटो करवाने और उनसे प्यार की पीगें बढ़ाना क्या इस उम्र में ठीक है.'

एकांश जान गया था अब कुछ भी संभव नहीं है. एकांश के रिटायरमेंट के तीन चार साल ही रह गये थे. रात-दिन की चिंता और कलह ने उसे तोड़ दिया था. एक दिन ऑफ़िस में ही उसे चक्कर आ गया और गिर पड़ा था.

ऑफ़िस के लोग उसे अस्पताल ले गये. उसके टेस्ट करवाए गए. पता चला सुगर लेवल बहुत नीचे चला गया था. ब्लड प्रेशर तो पहले से था ही.

शुभांगी ने बिलकुल देखभाल नहीं की. बच्चों की

कविता

सड़क

चंद्र प्रकाश श्रीवास्तव

यह सड़क सबकी है,
साइकिल पर बल्टा लटकाए दूध वालों की,
मिचमिची आंखों पर ऐनक चढ़ाए
स्कूटर पर टंगे,
दफ़्तर जाते हुए बाबुओं की.
पीठ पर क़िताबों का बस्ता लादे,
पानी की बोतल टांगे,
रंग-बिरंगी यूनीफ़ार्म में स्कूल जाते हुए,
हंसते-खिलखिलाते बच्चों की,
घर-बार गिरवी रखकर शहर के बड़े डॉक्टर के पास
या मुकदमे की तारीख़ पर जा रहे,
गांव कस्बों के अनगिनत लोंगों की.
यूं तो यह सड़क आवारा जानवरों,
हाथ पसारे अधनंगे भिखारियों तक की है.
कल इसी सड़क पर,
बेंतों की मार से लहूलुहान
पड़ा था एक गंवार दूधवाला
उसे नहीं पता यह सड़क किसी की नहीं होती.
जब ?
जब इस पर बांस-बल्लियां सजती हैं,
जब इस पर सायरन और सीटियां बजती हैं,
जब इस पर लाल नीली बत्तियां दौड़ती हैं
एयरपोर्ट से सर्किट हाउस तक.

२०८ गंगोत्री (हवेलिया) झूंसी,
इलाहाबाद २११०१९
फोन ९४५१३७२२८१, ८३१८५३२३६८.
ई-मेल : samaysamvad2022@gmail.com

नौकरियां हैं, वे सुबह निकलते तो रात को ही घर में घुसते. शुभांगी जानबूझकर एकांश को चिढ़ाती. रोटी पानी की पूछना तो दूर.

हार थककर एकांश ने एक कामवाली महिला को रख लिया. 'मेरे लिए खाना बनाना है तुम्हें. मेरे कपड़े धोने हैं. दवाई देनी है. अर्थात् सुबह से शाम तक घर में रहो. जो पैसे तुम बताओगी वही देंगे. खाना पीना भी यहीं करना.' कामवाली महिला के पति ने उसे छोड़ दिया था. एक बेटा और बहू थे उसके. बहू निर्दयी और दुष्ट थी. रोटी की भी नहीं पूछती थी उसे.

एकांश के घर उसे आश्रय मिल गया था. शुभांगी को ज़्यादा आपत्ति नहीं हुई थी.

समय निकल रहा था.....

कामवाली महिला पूरी ईमानदारी और निष्ठा से एकांश का ध्यान रखती. वह एकांश को 'साब' कहती. ऑफ़िस जाते समय उनका टिफ़िन तैयार करना. ब्रेक फास्ट देना, जूते पॉलिस करके तैयार रखना और कपड़े धोने के साथ-साथ उन पर प्रेस करना. एकांश का मन जीत लिया था उसने. वह एकांश की ऐसे सेवा करती जैसे उसका पति हो. वैसे भी एकांश का स्वभाव और सरलता सभी के लिए प्रिय रही.

कामवाली और एकांश छुट्टी वाले दिन घंटों बातें किया करते. कामवाली अपने पति की बातें बताती. सुख-दुख के साथी होने का दम भरनेवाला उसका पति एक झटके में ही कैसे उसे छोड़कर न जाने कहां चला गया था. वह बताते-बताते रोने लगती तो एकांश उसे चुप कराता. उसके आंसुओं को पोंछता. और उसे चुप कराते-कराते कितनी ही बार स्वयं रोने लगता. कामवाली अपना दुख भूल उसे संभालती. उसका दुख बांटती. तब नौकर और मालिक का रिश्ता धराशाही हो जाता था. एकांश एक बात हमेशा कहता कामवाली से 'एक सपना देखा था... सोचा था... शुभांगी के पैर अपनी गोद में रखकर घंटों उसके चेहरे को निहारता रहा करूंगा. उसे अपनी गोद में लिटाकर उसके माथे पर धीरे-धीरे हाथ से सहलाया करूंगा. उसे ख़ूब प्यार करूंगा और आज देखो, समय ने कहां से कहां पहुंचा दिया. सोचा था, जब बुढ़ापा आएगा तो लाठी का एक सिरा मैं पकड़ूंगा और दूसरा शुभांगी के हाथ में पकड़ाकर चला करूंगा और बुढ़ापे में भी उसके सफ़ेद बालों में सिंदूर भरकर इतराया करूंगा. जानती हो सिंदूर प्यार की निशानी होती है. मगर कहां पता था ये दिन भी आ जाएंगे.' फिर कितनी ही बार पूछता कामवाली से, 'क्या सचमुच मैं बुरा आदमी हूं. अच्छा बताओ मैं एक अच्छा पति नहीं हूं

न... मैं सचमुच दोषी हूं. अच्छा तुम बताओ.... बताती नहीं हो... बहुत दुष्ट हो तुम.' उससे कहते-कहते बच्चों की तरह बिलखने लगता तब कहीं से नहीं लगता कि वह इतना बड़ा साहब है.... तब कामवाली उसके आंसू पोंछती, माथा सहलाती. उसे सिर्फ़ इतना ही कह पाती, 'साहब आप बहुत अच्छा हो.'

'मैं अगर सच में अच्छा हूं तो ये सब क्या है क्यों मेरी शुभांगी... क्यों.... क्यों.' उसके ऐसा कहने पर कामवाली उसे शांत कराती. तब दोनों बिल्कुल चुप हो जाते. लगता जैसे अपने-अपने दुखों को ओढ़ लेते हों या फिर दुखों से निकलने के लिए एक दूसरे का सहारा बनने की कोशिश में हों. कामवाली आयी तो उसकी देखरेख के लिए थी परंतु न जाने कब उसकी सबसे अच्छी दोस्त बन गयी थी.

इधर शुभांगी रहती तो घर के फ़र्स्ट फ़्लोर पर थी लेकिन नज़र कामवाली पर पूरी रखती. एकांश ग्राउंड फ़्लोर पर रहता था. कई बार एकांश और कामवाली हंस-हंसकर बातें भी कर लेते थे जिसे सुनकर शुभांगी अंदर तक जल-भुन जाती और तभी...

तभी एक शाम....

शुभांगी ने कामवाली को अपने पास बुलाया. कामवाली एकांश को खाना परोस रही थी. खाना देकर उसके पास पहुंची तो शुभांगी ने उससे कहा, 'बहुत ख़ुश मत होओ तुम... जिस आदमी की तुम इतनी सेवा कर रही हो. वो तुम्हारा कभी नहीं होगा.' फिर अपनी ओर अंगुली करते हुए बोली थी, 'मुझे देख रही हो. क्या नहीं है मेरे पास. इस उम्र में भी मैं तुमसे ज़्यादा सुंदर हूं. मेरे पास धन है... दौलत है... रूप है... लावण्य है... चातुर्य है... योग्यता है... बुद्धि है.... जलवा है.'

'दीदी आप बहुत बड़ी हैं मुझसे. मुझसे कहीं ज़्यादा पढ़ी-लिखी भी हैं. मैं तो लगभग अनपढ़ हूं. पति मुझे जीवन के बीच रास्ते में छोड़कर चला गया. पति नहीं है मेरा लेकिन सच कहूं आप पति के होते हुए भी विधवा हैं. आपके सामने ख़ुशियां हैं, सुख है. पति का प्यार है लेकिन आपने, अपने अहंकार और शक के कारण सब-कुछ गंवा दिया.' आगे कहा था कामवाली ने, 'मेरे साथ आपकी कैसी तुलना. आप पटरानी हैं और मैं काग उड़ाने वाली. लेकिन दुख इस बात का है कि आज आपके पास कुछ भी नहीं है. और जहां तक साब की बात है तो मेरे पास शब्द ही नहीं हैं जो मैं उनके बारे में कुछ कहूं... आप उन्हें समझ नहीं पायी आपका गुरूर आप पर हर समय हावी रहा. पति और गुरूर दोनों साथ-साथ नहीं चलते दीदी और जहां तक मेरा सवाल है तो... वे मेरे भाई भी हैं, पिता भी हैं और...'

कामवाली कुछ आगे बोलती कि शुभांगी बोल पड़ी थी, '.... और पति भी.'

'ठीक कहा आपने, पति भी. मेरा पति आज से चौदह साल पहले मुझे छोड़कर घर से चला गया था. लौटा ही नहीं आज तक. जब एक ने मेरा साथ नहीं दिया तो और से कैसी उम्मीद.' फिर बिलकुल शुभांगी के चेहरे के सामने अपना चेहरा करके बोली थी, 'दीदी आपके इसी व्यवहार ने... इन्हीं बातों ने... आज आपको कहीं का नहीं छोड़ा. स्त्री पुरुष का हर रिश्ता पति-पत्नी का ही नहीं होता. कुछ रिश्ते बहुत अलग होते हैं जिन्हें शब्दों में नहीं बांधा जा सकता, कोई नाम नहीं दिया जा सकता, बेनाम होते हैं.' और चलने लगी थी. फिर रुकी और बोली थी, 'चलती हूं दीदी.... साब ने खाना खा लिया होगा.' फिर आगे बोली थी 'आज आपकी बातों के चक्कर में उनके पास न बैठ पायी. नहीं तो खाना अपने सामने ही खिलाती हूं उन्हें. आपको तो पता ही होगा. साब को खाना खाते समय पहले ही कौर पर पानी देना होता है. हिचकियां आती हैं उन्हें.' फिर लगभग भागते हुए बोली थी, 'और दवाएं भी तो देनी हैं. हे भगवान.'

कामवाली भागती हुई एकांश के पास आ गयी थी. आज खाना देते समय पानी नहीं रख पायी थी उनके पास. एकांश ने पहली ही कौर खाया होगा. हिचकियां रुकी ही नहीं होंगी. पानी था ही नहीं उसके पास. सब्ज़ी पर ही लुढ़क गया था. कामवाली साब... साब कहकर बिलख रही थी.

बेटा-बेटी भागकर आ गये थे. शुभांगी भी आ गयी थी. दोनों बच्चे भी पापा-पापा करके विलाप कर रहे थे कि कामवाली ने दोनों हाथ ज़मीन पर दे मारे थे. हरे कांच की चूड़ियां टूटकर बिखर गयी थीं.

शुभांगी हारे हुए जुआरी की तरह हाथ मल रही थी.

२४०, बाबा फरीदपुरी,
वेस्ट पटेल नगर,
नई दिल्ली-११०००८.
फोन : ९८६८८४६३८८

नींव

यशोधरा भटनागर

जन्म - ग्वालियर, (म. प्र.)
शिक्षा : बी. ए. ऑनर्स हिंदी, (दिल्ली वि. वि.)
एम. ए. (हिंदी साहित्य) डॉ. हरिसिंह गौर वि. वि., सागर बी. एड. बरकतउल्ला वि. वि. (भोपाल)
सेंट मेरीज सीनियर सेंकेंडरी स्कूल देवास में तीस वर्षों से अधिक हिंदी अध्यापन का कार्य. विभागाध्यक्ष हिंदी के पद से सेवानिवृत्त हो कर स्वतंत्र लेखन का कार्य निरंतर जारी.
दो काव्य संग्रह 'रणवीर' व 'तरंगिणी' तथा एक लघुकथा संग्रह 'एलबम' प्रकाशित.
सदस्यता :
लेखिका संघ, भोपाल, वामा साहित्य मंच, इंदौर, क्षितिज, इंदौर.
अनेक पुरस्कारों एवं सम्मानों से अलंकृत.

सरो के पांव ज़मीन पर नहीं पड़ रहे थे. कभी वह गुनगुनाती, मुस्काती और अपने आप ही हंस पड़ती. जब से बेटे का फ़ोन आया है सरो सातवें आसमान पर है. उसी दिन से बेटे के स्वागत सत्कार की तैयारियों में लग गयी है. बरसों से मुरझाया घर खिल उठा है. धुले-प्रेस किए पर्दे खिड़कियों पर इतरा रहे हैं... घर का कोना-कोना दमक रहा है. आंगन में सद्य स्नातः मिट्टी के दो डोलची और तबलची अपना संगीत छेड़े हुए हैं... लता वल्लरियां झूम रही हैं... पुष्प भी खिल-खिल उठे हैं... दीवारों पर सरो के हाथ से बने मांडने भी सजीव हो बतिया रहे हैं...

कितना काम है और यह रधिया भी अलाल हो गयी है. कितना धीरे-धीरे काम करती है. तनु के आने में बस दो दिन बचे हैं. महीने भर से लगी हैं. तब जाकर....

अभी भी कितने काम बाक़ी हैं. बाज़ार से सब्ज़ी लानी है. लाड़ले की पसंद का गाजर का हलवा बनाना है, दही बड़े की तैयारी तो परसों ही कर लूंगी उड़द की दाल की कचौरियां, इमली की सोंठ, बथुए का रायता... बेटू के पसंदीदा सारी डिशेज़ मेन्यू में अपने आप जगह पा गयीं. बरसों हो गए. पिछली बार तनु के आने पर ही बनाए थे.

तनु का पेट भर जाता, पर मन नहीं भरता. तब सरो ही कहती, — बेटा! बस थाली को हाथ जोड़ लो, पेट खराब हो जाएगा.'

मां ! आलू-टमाटर की सब्ज़ी क्या बनायी है ! और कचौरियां तो आपके हाथों में तो जादू है जादू... और सरो फूल कर कुप्पा हो जाती.

समय के साथ-साथ उनके दिए पखों से ही बच्चों ने ऊंची उड़ान भरी और वे सरो और सुबोध अकेलेपन से घिर गए. दोनों अतीत से गुज़रते

वर्तमान में जीते.

वे झूठ क्यों बोलें — एक दिन भी ऐसा ना जाता जब तनु उन्हें कॉल न करता हो ! ढेरों बातें होतीं. कभी वीडियो चैट, कभी कॉल... बेटा-बहू दोनों ही प्यार भरी बातों से खालीपन भर देते, पर मन न भरता.

जीवन के इस पड़ाव पर यह तो सबके साथ होता है. वे स्वयं को समझातीं और ख़ुद को व्यस्त रखने की कोशिश करतीं. पर व्यस्तता में भी मन का रीतापन न भरता.

पूरी रात आंखों में ही कट गयी. सुबह चार बजे की फ़्लाइट है. उन्होंने पौने चार का अलार्म लगा लिया. हालांकि इसकी ज़रूरत ही क्या थी ? बस कुछ बुनते-गुनते सरो की सुबह हो गयी. सरो और सुबोध तनु के कमरे का एक बार फिर से निरीक्षण कर, साफ़-स्वच्छ बेड की बड़े सलीके से बिछी चादर को, हथेलियों के स्नेहिल स्पर्श से, बड़े प्यार से सलवटें न होने पर भी सलवटें दूर कर, घर भर का चक्कर लगा, सोफ़े पर पसर गए.

पर सरो को चैन कहां? फिर रसोई की ओर दौड़ गयी. कहीं कोई कमी तो नहीं रह गयी? चश्मा लगाकर अलमारी में रखी सारी बरनियां देख लीं. दूध-मसाला, जीरावन, बादामपाक, लसोड़े का अचार, अठाना हरी मिर्च का अचार ... और बहू की पसंद का कॉफी पाउडर. सारी बरनियां चमचमाती खिलखिला रही थीं.

कुछ तो करना था. कुछ तो भूल रही हूं. हां, कचौरी के लिए दाल जो भिगोनी है.

फ़्लाइट लैंड हो गयी होगी ना जी ! अरे सुनो तो बहू का फ़ोन है, आधे घंटे में घर पहुंच रहे हैं. सरो ने बाहर की बत्ती जला दी और शॉल लपेट, स्लीपर सटका, आंगन में चहल कदमी करने लगी.

सफ़ेद रंग की लंबी गाड़ी गेट पर खड़ी हो गयी. सरो फुर्ती से गेट की ओर लपकी. गठिया से शिथिल हो गए बूढ़े पैरों में उत्साह-ऊर्जा का संचार हो गया.

मां! ऊंचे पूरे उनके लाल ने मां को अपनी बांहों में भर लिया. ख़ुशी से उमगती आंखों नीर झर पड़ा. बिल्कुल नहीं बदला उनका तनु. तब जो उनकी बांहों में, घूम-घूम लोरियां सुनता था, आज वह बच्चे की नायीं दुबक गयीं. अपूर्व सुख की अनुभूति.

पर मन के एक कोने में दबा हुआ भय सिर उठा रहा था. ऊंहहह, नहीं ऐसा नहीं हो सकता. मिसेज़ चोपड़ा कुछ भी कहती हैं, किसी की ख़ुशी उनसे कहां देखी जाती है?

हुआ यूं था कि पूरे अड़ोस-पड़ोस में वे गा आयी थीं कि अगले महीने उनके बेटा-बहू आ रहे हैं. झटपट सीढ़ियां चढ़कर ऊपर वाली मिसेज़ चोपड़ा के यहां भी चली गयी थीं ...पर मिसेज़ चोपड़ा उनकी ख़ुशी से ख़ुश ना होकर बोलीं — ज़रूर कोई काम होगा, शायद प्रॉपर्टी के लिए आ रहा हो, तभी पास में बैठी मिसेस खन्ना ने भी उनके सुर से सुर मिला दिया. वे भुनभुनाते हुए उल्टे पांव अपने घर लौट आयीं. पर मन में शंकाओं के कुकरमुत्ते सिर उठाने लगे. उन्होंने सिर झटक कर सब कुछ दूर झटकने की कोशिश की. नहीं ! उनका तनु ऐसा नहीं कर सकता. पर फिर एक विचार मन में हिलोरे लेने लगा -- क्या करें ? आजकल हवा ही ऐसी चल रही है. वह अंदर ही अंदर सहम गयी. सुबोध ने पूछा भी, पर वह कुछ ना बोली. गुमसुम–सी हो गयी.

तभी जींस टॉप में कसी बहू उनके पैर छू, गले लग गयी. सरो को तो मानो सारा संसार मिल गया.

तनु और बहू के आने से घर भरा-भरा सा लगने लगा. बहू फ्रैश हो कर आ गयी थी. सरो उठकर किचन की ओर जाने लगीं. मां आप बैठिए मैं चाय बनाकर लाती हूं.

थोड़ी ही देर में नक्काशी वाली ट्रे में, सुनहरी किनार वाली सफ़ेद प्यालियां और बिस्किट सजा लायी. पापा आपकी ब्लैक टी, मां आपकी अदरक वाली चाय सरो ने मुस्कुराते हुए कप उठा लिया. चाय की चुस्कियों के साथ. मिसेज़ चोपड़ा ....

मां कहां खो गयीं ? तनु उनकी गोद में सिर रखकर, सोफ़े पर पसर गया. बस बेटा तुम्हारा बचपन याद आ गया. कितने अच्छे थे न वो दिन ?

हां मां ! तनु उठा और आंगन की ओर बढ़ चला. मां यह घर-आंगन तो यादों का दस्तावेज़ है. मुझे याद है, लॉन में जब आप पानी देती थीं तब हम पानी में कितनी मस्ती करते थे और यह गुलमोहर मनु के दूसरे बर्थडे पर लगाया था. इस पारिजात के झरे सफ़ेद फूलों से गणेश जी की झांकी सजाते थे. दिवाली पर यह लालटेन और सीरीज़ से सजा तना खड़ा रहता था. और हां मां ! बारिश के दिनों में छत

लघुकथा

टिच्चू एंड कंपनी

कृष्णा अग्निहोत्री

रहवासी संग की मीटिंग थी और पांडेजी भागते हुए वहां पहुंचे. वे भी चुनाव हेतु खड़े हुए थे. उन्होंने हाथ जोड़ कहा, 'भाइयों मेरे पास रहवासी संघ के धन की बचत हेतु एक योजना है.'

- बताइए न पांडेजी, सब बोल पड़े.

- देखिए, हम सबको चारों चौहारे की सुरक्षा हेतु चौकीदार को ४०० रुपए माल देना पड़ता है, पर अब इसकी आवश्यकता न पड़ेगी. हमारे पास चौराहों की निगरानी हेतु टिच्चू एंड कंपनी जो है.

- ये कौन है? कब नियुक्ति हुई व वे फ्री काम क्यों करेंगे ?

- मैं समझाता हूं, अपने भौं-भौं न करते चिंटू व उसके दोस्तों को रात ही में सोशल लाइफ़ बिताने की आवश्यकता है. वे सब अपनी अपनी गर्लफ्रेंड के साथ रात होते ही सोशल लाइफ़ बिताने चारों चौराहों पर अलग-अलग चले जाते हैं और मस्ती करते हैं. चौराहों पर पड़ी दिन भर की जूठन मिलकर मस्त लेते रहते हैं. मजाल है कि कोई अपराधी किसी भी चौराहे से सुरक्षित निकल जाये? ये लोग उसके पैर पकड़ लेते हैं. टीम के जिस जोड़े को जिस पर से अधिक जूठन मिलती है, वह वहां अधिक समय बैठ जागता है.

चौकीदार की तो सीटी बजती है, पर इनकी भौं-भौं से तो कोई भी वहां से निकल नहीं सकता. चारो चौराहों पर इनकी भारी जमावट है.

चिंटू तो जहां से जूठन मिलती है वहां कार के नीचे छूपकर बैठा रहता है, जैसे ही कोई निकला कि उसने पीछे से पकड़ा. तब मकान मालिक भी डंडा ले पिल जाते हैं. इस तरह 'हल्दी लगे न फिटकरी रंग चौखा हाय.'

- बात तो थारी खरी है. अब हम लोग जूठन अधिक बढ़ा देंगे.

- हां, कहां हमें चालीस हज़ार ख़र्च करने पड़ते थे. अब यही धन कॉलोनी के विकास हेतु काम आयेगी.

- और क्या चिंट्टू तो गबरु युवक है. वह पिल्लों की तादात बढ़ा ही रहा है.

- हम जूठन की मात्रा बढ़ा देंगे. सब कुश हो वहां से चल दिये.

५३२–ए, आईए महालक्ष्मी नगर, इंदौर (म.प्र.)

पर नालियां बंद कर हम छत पर पानी भर लेते थे और कैसी छपाछप्प करते थे. क्रिकेट खेलते थे. कैच लेने के लिए पानी में गिरते थे. सब कुछ याद है मां...

मां चुप थी. आंखों से नीर अविरल बहा जा रहा था.

मां इन यादों के जीने के लिए, हम 'मातृछाया' में आते हैं, प्राणवायु पाकर फिर उड़ जाते हैं, पर प्राण आप ही के पास रह जाता है. आप और बाबा के पास. आप दोनों की चिंता लगी रहती है. इसीलिए आपको लेने आए हैं. घर की देखभाल के लिए रामू काका हैं. बगीचे और घर दोनों की देखभाल होती रहेगी.

सरो ने बेटे को गले से लगा लिया. उनकी परवरिश जीत गयी थी. उनके दिए संस्कारों की मज़बूत नींव, कोई आंधी नहीं गिरा सकती. उनकी गर्दन तनी हुई थी.

हाथ में हर्शीस चॉकलेट के पैकेट लिये वे दनादन सीढ़ियां चढ़कर, मिसेज़ चोपड़ा की डोरबेल बजा रही थीं.

१५२, अलकापुरी,
देवास (म. प्र.)
मो.: ९४२५३०६५५४

दरारें

जयंत

१७ नवम्बर १९६१, धनबाद शहर (झारखंड)
शिक्षा - एम. ए. (अर्थशास्त्र), बी. एड.
कृतियां : परिचय (दस्तक साहित्य परिषद् पटना द्वारा सम्मानित), राग देश तथा अन्य कहानियां, आत्मजा एवं पश्चिम का सूरज (चारों कहानी संग्रह), मृणाल (खंड काव्य), सच से दूर सच के पास (कविता संग्रह), एक थी मैना (कहानी संग्रह).
उपन्यास – आखिर वह चला गया. सौ से अधिक कहानियां : हंस, इन्द्रप्रस्थ भारती, अक्षरा, वागर्थ और अन्य स्तरीय एवं साहित्यिक-पत्रिकाओं में प्रकाशित.
कुछ कहानियां मराठी, गुजराती एवं अन्य भाषाओं में अनुदित. आकाशवाणी एवं दूरदर्शन से कुछ कहानियां, कविताएं एवं वार्ताएं प्रसारित तथा कुछ पुरस्कृत. 'सेवक स्मृति साहित्य श्री' सम्मान से अलंकृत.
संप्रति : केंद्रीय विद्यालय कंकड़बाग, पटना (बिहार) भारत, में शिक्षण सेवा से सेवानिवृत्त.

राघवेंद्र बाबू एक माह से बिस्तर पर पड़े हैं. बुढ़ापा स्वयं में सबसे बड़ी बीमारी है.

बची-खुची कसर कमर के दर्द ने पूरी कर दी है. अब पहले से बहुत आराम है और सहारे से थोड़ा-बहुत बैठना तथा टहलना भी हो जाता है. डॉक्टरों ने बताया है कि उम्र की अधिकता के कारण हड्डियां कमज़ोर हो गयी हैं और कूल्हे की हड्डी में दरारें आ गयी हैं. दवाई, इंज़ेक्शन सभी चल रहे हैं. वे मन ही मन सोचते हैं कि संभवत: यह दरार भर भी जाए परंतु हृदय में पड़ी दरारें कैसे भरेंगी?

बड़े पुत्र राजकुमार का विवाह उन्होंने बहुत ही धूमधाम से किया था. स्वयं जा कर लड़की को देख आए थे और उसके घर-बार एवं परिवार के विषय में भी पूरा पता लगाया था. लड़की दिल्ली स्थित एक मल्टीनेशनल कंपनी में कार्यरत थी एवं उनका पुत्र भी दिल्ली में ही कार्यरत था. उनकी पत्नी और पुत्र राजकुमार ने दूसरे दौर में लड़की को देखा था.

लड़की पसंद आ गयी थी और विवाह हो गया. छोटे बेटे का नाम उनकी पत्नी ने प्रिंस रखा था. वे पत्नी पर उस समय बिगड़े हुए थे. उनका कहना था कि वह बच्चे को अंग्रेज़ी नाम देकर बिगाड़ रही है.

प्रिंस ने बड़े भाई राजकुमार के पहले ही अपने पसंद की लड़की से विवाह कर लिया था और उसने घर पर भी इसकी सूचना नहीं दी थी. कोर्ट मैरिज़ करने के बाद उसने फ़ोन से अपनी मां को बताया था कि वह पत्नी को लेकर आ रहा है. राघवेंद्र बाबू जब ऑफ़िस में थे उसी समय वह पत्नी को लेकर आया. घर लौटने पर जब उसकी पत्नी ने उनके चरण स्पर्श किए

थे तो उन्होंने मुंह फेर कर कहा था कि वे किसी प्रिंस और उसकी पत्नी को नहीं जानते, उनका तो सिर्फ़ एक ही बेटा है राजकुमार.

'दूसरे' जाति की लड़की, कोई देखा न सुनी, घर-कुल संस्कार कुछ पता नहीं और झट से कोर्ट मैरिज़ कर ली नाम ही प्रिंस है! बड़े शौक़ से रखा था ना तुमने, परिणाम तुम्हारे सामने है. मुझे खूब़ पता है, ऐसी लड़कियां इसी ताक में रहती हैं, लड़का दिखा, फंसाया और विवाह कर लिया.'

'क्या करिएगा आजकल दहेज के कारण इसे बढ़ावा मिला है.'

'अरे तो मैं कौन सा दहेज लेने जा रहा हूं, बड़े के विवाह में? शादी-विवाह में तो दोनों तरफ से लेनदेन होता ही है. यदि यह सब नहीं हो तो फिर रिश्ता ही कैसा?'

'अब तो सब हो चुका. आज नहीं कल तो उसे स्वीकार करना ही है तो मेरे विचार से....'

'तुम चुप रहो, तुमने ही उसे सिर चढ़ाया है. मैं एकदम स्पष्ट शब्दों में कह देता हूं कि मैं उसे बहू नहीं स्वीकार करने वाला.'

प्रिंस के ससुर का फ़ोन आया तो राघवेंद्र बाबू ने उन्हें भी खरी-खोटी सुनायी. — 'पहले से आपको पता था तो आपने क्यों नहीं रोका? यहां सूचित करने के लिए आवश्यक भी नहीं समझा ! विवाह में आप लोग भी शामिल हुए. मैं खूब़ समझता हूं आप जैसे लोगों को.' उन्होंने प्रिंस के ससुर को भी यही कहा था कि उनका एकमात्र पुत्र राजकुमार है और भविष्य में उन्हें यहां संपर्क करने की आवश्यकता नहीं है. पत्नी ने फिर से समझाना चाहा था - 'बेटा तो अपना है. अब विवाह कर ही लिया तो क्या करिएगा? एक सौदा ही कर लीजिए, समझौता ही कर लीजिए.'

'कैसा सौदा, कैसा समझौता? वह उससे डाइवोर्स दे, बस एक यही समझौता हो सकता है.'

'पहले मेरी बात तो सुन लीजिए.'

'क्या सुन लूं, अब क्या सुनना बाक़ी रह गया है?'

'देखिए पहले बहू को अपना लीजिए; फिर धीरे-धीरे उसे उसके परिवार से दूर कर लेंगे हम लोग.'

'नहीं करना ऐसा छिछोरापन. तुम औरतों की बुद्धि तो सीरियल देख-देख कर और भी भ्रष्ट हो गयी है. हर जगह अपनी कुटिल बुद्धि लगाती हो, वैसे भी दिमाग़ तो पहले से ही नहीं है. जिस लड़की ने तुम्हारा बेटा बिना बताए छीन लिया, तुम्हें क्या लगता है वह अपने माता-पिता को तुम्हारे अपनाने भर से छोड़ देगी?'

'प्रयास तो...'

'कैसा प्रयास? एकमात्र समाधान यही है कि वह डाइवोर्स दे, बस.''

'ऐसा तो वह करने से रहा.'

'मुझे पता है. तुम देखती जाओ मैं क्या करता हूं. बस कल के बाद देख लेना, परसों रविवार तक की प्रतीक्षा करो.'

पत्नी डर गयी थी कि पता नहीं राघवेंद्र क्या कर बैठे परंतु उसने जो किया वह एकदम अप्रत्याशित ही था. रविवार की सुबह राघवेंद्र और दिनों की भांति तड़के ही उठ गया. तैयार हुआ और चाय मांगी. पत्नी ने चाय बना ली और प्रश्न किया - 'क्या बात है रविवार को तो आप छह साढ़े छह के पहले नहीं उठते, आज अभी ही उठ गये?'

'मैं कुछ घंटों में आ रहा हूं.'

'आ रहा हूं, मतलब?'

राघवेंद्र ने कुछ नहीं कहा और बस आ रहा हूं कहता हुआ कुर्ता पजामा पहन कर पैरों में हवाई चप्पल डालकर चलता बना. मोबाइल भी घर पर ही छोड़ गया. अगले दो-तीन घंटों तक उसका कहीं पता ना चला. घबराकर पत्नी ने उसके एक दो मित्रों के पास फ़ोन किया और सबों का एक ही उत्तर था कि वह उनके यहां नहीं आया था. पता नहीं कहां गए हैं, दस बज रहे हैं. आधा घंटा और गुज़र गया और जब वह लौटा तो उसे देखकर वह चौंक गयी – 'यह क्या?' उसने बाल मुड़ा रखते थे और दाढ़ी मूछें भी सफ़ाचट थीं. ललाट पर टीका था और हाथ में एक थैला था. आश्चर्य में डूबते उतराते हुए उसने प्रश्न किया - 'यह सब क्या है?'

'कुछ नहीं मैंने आज प्रिंस का विधिवत श्राद्धकर्म कर दिया है और कंगालों को भी खिला दिया है. मंदिर में पंडित जी से पूजा करायी है. उसी में बचे हुए फल हैं और मिठाइयां भी. प्रसाद है, ग्रहण कर लो और चाहो तो लोगों में बांट दो.'

'कैसे बा.... ऽ...ऽ....प हो तुम'- कहते हुए पत्नी फूट-फूट कर रोती हुई सिर पीटनेलगी और पूरे थैले को डस्टबिन में डाल दिया.

'प्रसाद को कूड़े में नहीं डाला जाता. यह ईश्वर का अपमान है। तुम्हें नहीं लेना है तो मत लो मैं इसे भी उन

ग़रीबों में बांट देता हूं.'

'तुमने जो..ऽ..ऽ.अपने जीवित पुत्र का श्राद्ध किया है,ऽ.ऽ... वह ईश्वर का कौन-सा सम्मान है.'

'मुझे तुमसे बहस नहीं करनी, तुम ठहरी काली माई, तन, मन और बुद्धि तीनों से काली.'

राघवेंद्र ने डस्टबिन से पॉलीथिन के थैले को निकाल लिया और फिर से चलता बना. आधे घंटे बाद जब वह लौटकर आया तो उसने बताया कि सब कुछ उसने भिखारियों में बांट दिया था.

समय आगे बढ़ता चला गया और दोनों लड़के अपनी-अपनी गृहस्थी में रम गए थे. बड़ा बेटा और उसकी पत्नी यदा-कदा त्योहारों के अवसर पर आते रहते थे प्रिंस पत्नी के साथ उसके भय से कभी नहीं आता. धीरे-धीरे कुछ और समय गुज़रा. चार-पांच वर्षों बाद वह एक बार अपने बच्चे और पत्नी के साथ आया. मां तो बहुत प्रसन्न हुई है परंतु पिता की भृकुटी तनी ही रही. उन्होंने कहा भी कि मां की ममता के कारण उन्होंने पुत्र को आने की अनुमति दे रखी है परंतु उसे यानी पुत्र वधू को यहां आने की आवश्यकता नहीं है. प्रिंस की पत्नी रोते हुए विदा हुई थी. उसने कहा था कि अब वह तभी आएगी जब पिताजी का मन उसकी तरफ से साफ हो जाएगा.

राघवेंद्र बाबू का शरीर जब तक चलता रहा सब कुछ ठीक ही रहा. सेवानिवृत्ति के पश्चात उन्होंने निर्णय लिया कि बड़े बेटे और बहू के यहां चल कर रहा जाए. पत्नी जाना तो नहीं चाहती थी परंतु उसने राघवेंद्र की बात मान कर साथ चलना स्वीकार कर लिया.

पंद्रह दिन गुज़रते-गुज़रते राघवेंद्र को यह अनुभव होने लगा कि राजकुमार के लिए उन्होंने जिस संस्कारी परिवार की लड़की ढूंढी थी उसमें कुछ ना कुछ कमी अवश्य थी. आए दिन होने वाले खटपट और उसके शुष्क व्यवहार ने उन दोनों को क्षुब्ध कर दिया. इस पर भी बेटे के मौन ने रही सही कमी पूरी कर दी थी.

आए तो यह सोच कर थे कि सब कुछ ठीक रहा तो बुढ़ापा यहीं काट लेंगे. छोटा बेटा प्रिंस भी अपनी पत्नी के साथ आजकल दिल्ली में ही रह रहा था. उन दोनों के आने के बाद वह एक बार मिलने भी आ चुका था. जाते-जाते दोनों से वह अनुरोध भी कर गया था कि वे उसके यहां भी आ कर रहें. पत्नी चाहती थी कि उसके यहां भी चला जाए परंतु राघवेंद्र तैयार नहीं हुआ। वह बोला — 'अब और कहीं नहीं जाना. जब अपना ही अपना नहीं रहा तो वह तो पहले से ही पराया है. वहां क्या जाना, अब यहां से सीधे घर लौटना हैं. जिनकी संतानें नहीं होती, उनका बुढ़ापा भी तो ईश्वर के भरोसे कट ही जाता है.'

'अब उम्र हुई खाना-पीना छोड़ भी दो तो बीमारी...'

'अब जो होगा देखा जाएगा.'- राघवेंद्र ने उसकी बात

कविता

सत्येंद्र सिंह

मैं कविता नहीं करता
बात करता हूं,
अपने आपसे/आपसे
और उससे.
मैं कविता नहीं करता
याद करता हूं/बचपन की
जवानी की/
मित्रों की / शत्रुओं की
माता की / पिता की
और भाई बहनों की.
मैं कविता नहीं करता
अपने आपको देखता हूं
कब किससे / किसने मुझसे
प्यार किया.
कब मुझे प्रभावित किया
अहंकार ने / क्रोध ने / लालच ने
और मैं कब गिरा / कब खड़ा हुआ।
मैं कविता नहीं करता
सपने देखता हूं,
बढ़ते बच्चों का /
उनकी उन्नति / प्रगति का,
उनके आचार विचार का
उनके खिलखिलाते चेहरों का
और देश की छवि का.
जी हां,
मैं कविता नहीं करता.

सप्तगिरी सोसायटी, जांभुलवाडी रोड,
आंबेगांव खुर्द, पुणे - ४११०४३

काट कर कहा. मिलकर बना लेंगे हम लोग. दो व्यक्ति का खाना ही क्या? कभी-कभार टिफ़िन भी मंगाया जा सकता है.

पटना शहर में अब सब कुछ मिलने लगा है. कॉल करो तो चिकित्सा सुविधाएं भी घर बैठे मिल जाती हैं. पास में मोबाइल और पैसे होने चाहिए. जितनी पेंशन मिल रही है वह हम दोनों के लिए पर्याप्त.'

पत्नी को पता था कि राघवेंद्र नहीं मानने वाला. उसने उसके प्रस्ताव को यह कह कर स्वीकार कर लिया था कि जैसी उसकी इच्छा. दोनों वापस लौट आए थे और बुढ़ापे की गाड़ी जैसे-तैसे हिचकोले खाती आगे बढ़ने लगी थी. डेढ़ वर्षों बाद जब पत्नी चल बसी तो राघवेंद्र अकेला रह गया. दोनों पुत्र उनकी पत्नी और पोते-पोती कामकाज के अवसर पर मौजूद थे. प्रिंस और उसकी पत्नी ने उससे फिर कहा कि उसे अब अकेला नहीं रहना चाहिए और अब उनके साथ चल कर रहना चाहिए. वह तैयार नहीं हुआ. राजकुमार ने भी ऊपरी मन से उसे चलने कहा परंतु राघवेंद्र के होठों पर फीकी हंसी आ कर रह गयी. कार्यक्रम में भी उसका एवं उसके परिवार का ठहराव एक दिन का ही था.

आने वाले दिनों में वह एकाकी जीवन बिताने लगा पुत्रों को उसने फ़ोन पर कह दिया कि जल्दी ही वह वसीयत कर देगा. उसने राजकुमार को बताया था कि ज्यादातर भाग वह उसे दे देगा. राजकुमार की प्रतिक्रिया थी कि जैसा उचित समझें. दूसरी तरफ प्रिंस को उसने कहा कि सब कुछ के बावजूद वह उसे भी कुछ देगा. प्रिंस और उसकी पत्नी ने कहा था कि उन्हें सिर्फ़ उसका आशीर्वाद चाहिए था. वह कुछ करता उसके पहले ही एक दिन सुबह जब उसकी नींद टूटी तो वह बिस्तर से उठ नहीं सका. उसे कूल्हे की हड्डी में बड़ा तेज़ दर्द था.

बड़ी मुश्किल से वह अपार्टमेंट के केयरटेकर को सूचित कर सका. लोग उसे नर्सिंग होम ले गए. स्ट्रेचर से ले जाने के क्रम में पकड़-धकड़ से दर्द इतना बढ़ा कि वह मूर्छित ही हो गया.

जब होश आया तो प्रिंस उसके सामने बैठा था. उसने जानना चाहा था कि राजकुमार कहां है? राघवेंद्र की आस टूटी नहीं थी. प्रिंस ने उसे बोलते देख कर कहा — 'भैया को विदेश जाना है. भैया-भाभी उसी की तैयारी में लगे हैं. उनका आना संभव नहीं है. मैंने सूचना दी थी. उन्होंने कहा कि तुम चले जाओ... आपको चिंता नहीं करनी है मैंने डॉक्टर से बात कर ली है.'

'तुम कब आए?'

'दस बजे सूचना मिली और मैंने तुरंत फ़्लाइट पकड़ ली. पांच बजे तक मैं यहां आ गया था. आप चिंता ना करें कल ही दिल्ली चलना है सारी व्यवस्था हो गयी है और डॉक्टरों ने भी हां कह दिया है. मैं और नयन सब संभाल लेंगे.'

दूसरे ही दिन प्रिंस राघवेंद्र को दिल्ली ले गया. वहां एक नर्सिंग होम में उसे भर्ती कराया गया. दो-तीन दिनों के बाद डॉक्टरों ने उसे घर जाने की अनुमति दे दी. प्रिंस उसे घर पर ले आया. प्रिंस की पत्नी नयन ने सब कुछ संभाल लिया. वह चुपचाप विवश सा बिस्तर पर पड़ा देखता रहा. राजकुमार और उसकी पत्नी इन तीन दिनों में एक दो बार नर्सिंग होम आकर अपनी उपस्थिति दर्ज कर गए थे. कल सुबह राजकुमार विदेश के लिए प्रस्थान कर रहा था. उसने अपनी अनेकों व्यस्तताएं गिना दी थी.

उसे घर पर आए दो दिन हो चुके थे. पोता अब स्कूल जाने लगा था और प्रिंस भी अपने ऑफ़िस जा रहा था. वह चला गया तो राघवेंद्र से रहा नहीं गया. नयन कमरे में सामान को ठीक कर रही थी. उसने पूछ ही लिया -

'तुमने काम छोड़ दिया है क्या?'

'नहीं तो.' - वह चौंक कर बोली.

'तो फिर घर में.....?' - राघवेंद्र ने बात अधूरी छोड़ दी.

'मैंने डेढ़ महीने की छुट्टी ले ली है पिताजी. पहले आपका स्वास्थ्य है काम और आफ़िस जाना तो लगा ही रहेगा. अप्लाई किया छुट्टी मिल गयी तो ले ली. डॉक्टर ने कहा है कि आप एक महीने में ठीक हो जाएंगे.'

नयन दूसरे कमरे में चली गयी. राघवेंद्र को लग रहा था कि उसके कूल्हे में उम्र के साथ आयी दरारें तो संभवत: भर चली हैं परंतु हृदय में आयी दरारें कैसे भरेंगी, वह समझ नहीं पा रहा था.

द्वारा -श्री अवध विहारी प्रसाद,
शिव दुर्गालय गली,
महेन्द्रू, पटना ८००००६,
मो. ९४३००६०३३६.
M. : +91 9430060336,
e-mail: kumar.jayant808@gmail.com

पूर्वाग्रह

रोचिका अरुण शर्मा

शिक्षा : इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग (कोटा).
जन्म : १४ मई १९७२

अन्यान्य विधाओं में लेखन व प्रकाशन : सभी राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर के साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर प्रकाशन.

: अनुवाद :
रचनाओं का तमिल , मलयालम , कन्नड़, गुजराती, बंगला , नेपाली , अंग्रेज़ी, उड़िया, पंजाबी भाषाओं में अनुवाद.
अनेक सम्मानों व पुरस्कारों से अलंकृत.

: संप्रति :
डायरेक्टर सुपर गॅन ट्रेडर अकॅडमी प्राइवेट लिमिटेड.

पूरे तेईस बरसों बाद स्नेहा अपने विवाह पूर्व की प्रिय सखी राखी से मिली थी. सोशल मीडिया पर राखी ने स्नेहा को ढूंढ लिया था और अब पिछले तीन वर्षों से वे दोनों योजना बना रही थीं कि इस बार मायके एक समय पर ही जायेंगी ताकि वे दोनों पुनः रूबरू हो सकें और बरसों की पीछे छूटी ढेर सारी बातें साझा कर सकें. विवाह उपरांत स्नेहा दुबई में बस गयी थी. वहां से वाट्सएप्प कॉल हो नहीं सकती कॉल की दर बहुत ज़्यादा हैं इसीलिए दोनों सिर्फ चैट ही किया करतीं.

एक दिन अचानक से राखी का संदेश देख स्नेहा बल्लियों उछलने लगी. उसने उसी समय उसके संदेश का जवाब दिया 'अरे ! यह तो तुमने बहुत ही खुश ख़बरी दी है, तुमसे मिलने की राह ताक रही हूं. यहां आने की तारीख तय होते ही मुझे ख़बर ज़रूर करना. और सुनो, मेरे घर में ही रहना, कोई होटल की बुकिंग मत करना.

राखी भी अपनी प्रिय सखी से स्नेहिल आमंत्रण पाकर अति प्रसन्न हुई और जैसे ही उसके पति निखिल दफ़्तर से घर आये वह चहक पड़ी 'हम ज़रूर मिलेंगे स्नेहा से दुबई में' दोनों सखियां मिलन की घड़ी को सोच कर अति रोमांचित थीं.

दिन यूं बीत रहे थे मानो घंटे और अंततः वह दिन आ ही गया जब राखी एमिरेट्स की दुबई जाने वाली उड़ान में उड़ चली थी. अपने पति के व्यवसाय के सिलसिले में प्रायोजित इस यात्रा में वह अपनी बेटी को भी साथ में लेकर गयी. स्नेहा ने खूब आग्रह किया कि वह उसके घर में ही ठहरे.

'हमारी होटल की बुकिंग हो चुकी है स्नेहा.'

ख़ैर, राखी अपने पति एवं बच्चों के साथ दुबई पहुंच गयी और पहली

ही शाम स्नेहा के घर रात के खाने के साथ दोनों सखियों के ठहाके गूंज उठे थे.

हां, जब वह भारत से रवाना हुई तो स्नेहा के लिए उपहार लेते समय तय नहीं कर पा रही थी कि उसके लिए क्या लिया जाए. इतने बरसों में न जाने कितनी बदल गयी होगी स्नेहा, धनाढ्य पिता की संतान नाजों से पली है. पति भी निश्चित रूप से अच्छा ही होगा. न जाने कैसी जीवन शैली होगी उसकी. भारतीय परिधान पहनती होगी कि नहीं. अनगिनत विचार मन में उथल-पुथल मचाये हुए थे. अंततः उसने अपनी प्रिय सखी के लिए एक सुंदर-सा ज्वेलरी सेट ले लिया था.

विवाह पूर्व की स्नेहा की जीवनशैली का ख्याल रख राखी ने अपना सबसे कीमती सलवार कुर्ता मेचिंग सेंडल के साथ पहन कर बन-ठन कर उसके घर जाना तय किया था. स्नेहा ने गर्मजोशी से उसका स्वागत किया. उसके पति एवं बच्चे भी घर में ही थे. उसके घर ड्राइंग रूम में लगा सोफा एवं बालकनी के दरवाज़े पर लगे डिज़ाइनर परदे देख राखी उसकी गृह-सज्जा की तारीफ़ किये बग़ैर न रह सकी 'नाइस हाउस ... तुमने सजाया भी बहुत सुंदर है.' मोतियों सी सुंदर दंतपंक्ति दिखा कर स्नेहा ने मोहक एवं निश्छल मुस्कान बिखेर दी थी.

दोनों के पति भी परिचय के बाद औपचारिक बातों में मशगूल थे एवं परिवारों के बच्चे भी आपस में शीघ्र ही घुलमिल गए थे. वे अपने-अपने करियर एवं पढाई को लेकर बातचीत कर रहे थे. तभी स्नेहा रसोई की और बढ़ गयी. पीछे-पीछे राखी भी रसोई में पहुंच गयी. स्नेहा ने भारतीय चाट एवं नाश्ता तैयार किया हुआ था. सुंदर प्लेटों में आकर्षक गार्निशिंग से सजा खाना अत्यंत लज़ीज़ दिखाई पड़ रहा था. स्नेहा की मनुहार एवं मनमोहक मुस्कान राखी के दिल को छू गयी. इतने बरसों बाद भी प्रेममयी स्नेहा के व्यवहार में झलकते स्नेह को राखी अपने हृदय में महसूस कर रही थी. दोनों के पति भी झट से मित्र हो गए थे. नयी-पुरानी बातों को साझा करते-करते पाया कि बच्चे भी गप्पें मारने लगे हैं. घर का माहौल बहुत मस्ती भरा हो गया था. दोनों परिवारों को बतियाते रात के बारह बज चुके थे. जैसेही राखी का ध्यान दीवार घड़ी पर पड़ा 'अरे तुम्हें सोना भी तो होगा, भई हम तो छुट्टियों पर हैं. सुबह देर से जगे तो कोई बात नहीं पर तुम्हारे पति को तो दफ़्तर जाना होगा.'

राखी की बात सुन कर स्नेहा ने निश्चिंतता जतायी 'ऐसा कुछ नहीं, सब मैनेज़ हो जाएगा.' उन्हें कार से होटल तक छोड़ कर स्नेहा और उसके पति अपने घर लौट आये थे. होटल पहुंचते ही राखी अपनी सहेली की तारीफ़ो के पुल बांधने लगी तो उसके पति भी हां में हां मिलाते हुए बोले 'इवन आय एम् इम्प्रेस्सेड विद योर फ्रेंड.'

अगली सुबह दोनों देर से जागे और दुबई मॉल को निकल पड़े. पूरा दिन वहीं बीत गया, बेटी को आइस स्केटिंग, अंडर वाटर किंगडम, टॉप ऑफ़ बुर्ज खलीफा, फाल्लिंग वाटर, म्यूज़िकल फाउन्टेन शो आदि देख कर बहुत ही मज़ा आया. विभिन्न ब्रांड के स्टोर्स देखते ही बनते थे.

थके-हारे शाम को होटल पहुंचे और खा-पी कर सोने लगे तभी×स्नेहा का फ़ोन राखी के फ़ोन पर आया 'क्या किया आज पूरे दिन?'

राखी ने अपनी पूरी घुमाई-फिराई का ब्योरा उसे दिया और पूछा 'सोने के गहनों की ख़रीदादारी करना उचित रहेगा क्या?'

'कितना लोगी ?' स्नेहा ने चुटकी लेते हुए पूछा.

कस्टम के नियमों के मुताबिक़ ताकि कहीं पर अटके नहीं.

हां मैं लेकर चलूंगी तुम्हें गोल्ड शॉपिंग के लिए, तुम फ़िक्र न करो.

अगले दिन फिर से राखी अपने पति के साथ स्नेहा के घर पर थी. स्नेहा के पति दफ़्तर से आये और उन्हें बड़ी दुबई गहनों की दुकानों में ले कर गये. स्नेहा के अनुभवी सलाह-मशवरे से राखी ने अच्छी शॉपिंग की. लौटते वक़्त दोनों बहुत प्रसन्न थीं. राखी अपनी सखी के स्नेहिल व्यवहार से अति प्रभावित थी. कार में बैठे-बैठे उसने स्नेहा का हाथ अपने हाथ में लिया और बोली, 'सच में तुम कितनी अच्छी हो स्नेहा, कितनी मेहनती. हम लोगों के लिए कितना समय दे रही हो तुम. बच्चों को भी उच्च शिक्षा के लिए विदेश भेज दिया है और क्या चाहिए जिंदगी से भला ?

घर भी इतने अच्छे से संभाल रही हो जबकि मुझे याद

है कि विवाह पूर्व तुम्हारे बंगले के आउट हाउस में घर के नौकरों के लिए कमरे बने हुए थे. बंगले के बाहर एक दरबान खड़ा रहता था. इतनी शानो-शौकत की ज़िंदगी जीती थीं तुम. शायद ही कभी हाथ से स्वयं के लिए एक गिलास पानी भी भरा हो.

वही नन्ही-सी, प्यारी सी बालिका स्नेहा आज कितनी ज़िम्मेदार है अपने परिवार के लिए, बच्चों के लिए, घर के लिए और मुझ जैसे दोस्तों के लिए भी. कहां मिलते हैं आजकल इतने निश्छल लोग जिनका हृदय प्रेम से लबरेज हो. सबसे बड़ी बात यह कि इस पचास की उम्र में अपने हाथों से पका कर खिलाना, आजकल तो लोग सीधे बाहर से ऑर्डर कर देते हैं या फिर दोस्तों को खाने के लिए बाहर लेकर चले जाते हैं.

भई, हमें तो अच्छा लगता है अपने दोस्तों के लिए यह सब करना और इतना तो कुछ हमने किया ही नहीं है जितना तुम तारीफ़ों के पुल बांध कर बखान कर रही हो. ऐसा नहीं है स्नेहा, सचमुच में आजकल इतना कोई नहीं करता. दोस्ती भी लोग ज़रूरत को ध्यान में रख कर करने लगे हैं. अब दोस्तों के स्थान पर समूह होने लगे हैं. समूह में घूमना-फिरना, समूह में मिलना, किटी-पार्टी, पॉट लक करना आदि.

लौटते वक़्त आज रात का खाना फिर स्नेहा के घर ही था. स्नेहा ने स्वादिष्ट छोले, चावल, पराठा, सब्ज़ी आदि बना कर रखा हुआ था. जब दोनों सखियां रसोई में गयीं, राखी ने माइक्रोवेव में खाना गर्म करने रख दिया और स्नेहा ने सुंदर क्रोकरी डायनिंग टेबल पर लगा दी. रसोई में काम करते हुए स्नेहा ने धीमे स्वर में राखी को अपने वैवाहिक जीवन के बारे में बताना शुरू किया. 'क्या बताऊं जब शादी हुई तुम तो जानती हो हमारे यहां सारा काम नौकरों-चाकरों के भरोसे था इसलिए मुझे कुछ पकाना आता नहीं था. ससुराल आने के बाद इतनी समस्या आयी कि कुछ भी पकाऊं तो किसी को स्वाद पसंद न आये. संयुक्त परिवार में रोटियां भी खूब बनती थीं. इसलिए मुझे सिर्फ़ रोटियां बनाने की ज़िम्मेदारी दे दी गयी. फिर मैं यहां दुबई आ गयी. शुरू में पति को कच्चा-पक्का बना कर खिलाया, फिर धीरे-धीरे सब सीखा.'

'बहुत मेहनत की है हमारी फूलकुमारी ने' राखी ने नेह भरी निगाह उसके चेहरे पर डाली तो स्नेहा भी मुस्कुरा दी.

अगले दिन राखी का गला पकड़ गया था. रात के समय बुखार भी हो गया. उसके पति को फ़िक्र होने लगी कि कहीं यह कोरोना की मार तो नहीं. सो राखी को डॉक्टर के पास ले गये.

डॉक्टर ने पुष्टि कर दी कि कोरोना तो नहीं है. हां, सर्दी-गर्मी का सा असर लग रहा है. दोनों ने राहत की सांस ली क्योंकि दो दिन बाद उन्हें स्वदेश लौटना था. बेटी का टीकाकरण नहीं हुआ था इसलिए उन्हें आर टी पी सी आर टेस्ट करवाना था. अगले दिन बेटी का टेस्ट रिज़ल्ट पॉज़िटिव मिला तो दोनों चौंक गये.

फ्लाइट के समय से पूर्व स्नेहा का फ़ोन आया 'कब निकल रहे हो?'

'अब हम निकल नहीं रहे हैं स्नेहा यही रहेंगे कुछ और दिन' राखी ने ठहाका लगाया.

'क्या मतलब.'

मतलब यह कि बिटिया कोरोना पॉज़िटिव पायी गयी है इसलिए हमें यहीं होटल में क्वारनटाइन होना पड़ेगा. सात दिन बाद पुनः टेस्ट होगा तब यदि रिपोर्ट निगेटिव आयी तो हम स्वदेश लौट सकेंगे.

दोनों जब बात कर रही थीं तो राखी का गला पहले से भी भारी हो गया था और वह खांसने लगी थी. तुम्हें तो एलर्जिक कोल्ड लग रहा है. और अब खाने का क्या होगा? यहां होटल वाले इंतज़ाम करेंगे ? स्नेहा ने फ़िक्र जतायी. 'यहां का खाना कॉन्टिनेंटल है स्नेहा, तीन समय एक-सा खाना खाना मुश्किल होगा. हमने होटल वालों से बात की है कि हम खाना बाहर से ऑर्डर करेंगे और रिसेप्शन वाले हमारे रूम में पहुंचा देंगे.'

'ठीक है, तो सुनो आज शाम का खाना लेकर मैं आ रही हूं.'

'सब हो जाएगा तुम क्यों इतनी परेशान हो रही हो? यहां भारतीय रेस्टोरेंट तो खूब हैं कहीं से भी आ जाएगा तुम क्यों इतनी दूर आने की तकलीफ़ उठा रही हो.'

'ऐसा कुछ नहीं, बेटे को किसी काम से बाहर लेकर जाना है तभी यहां होटल रिसेप्शन पर छोड़ दूंगी.'

'जैसा तुम ठीक समझो स्नेहा, लेकिन मैं फिर कहूंगी

आजकल इतना कोई नहीं करता जितना तुम हमारे लिए कर रही हो.'

शाम को स्नेहा द्वारा पहुंचाया हुआ खाना रिसेप्शन के स्टाफ़ द्वारा कमरे तक पहुंचा दिया गया था. जैसे ही राखी ने पैक खोला उसमें सलीके से पैक किया हुआ गरमा-गरम खाना था. साथ में एलर्जी से राहत हेतु कुछ दवाइयां, हल्दी एवं दालचीनी से बना घरेलु एंटी बायटिक भी था. फ़ोन पर स्नेहा ने यह सब पहले ही बता दिया था.

''स्नेहा तुम डॉक्टर की बेटी हो, इन घरेलू दवाइयों पर भरोसा करती हो?''

''हां, करती हूं.''

''तुम भी दिन में तीन बार यह एंटी बायटिक लेना तुम्हारा गला जल्द ही ठीक हो जाएगा.''

''ज़रूर स्नेहा तुम्हारा बहुत धन्यवाद, तुम कितनी अच्छी हो।हमारे लिए कितना कर रही हो.''

''यदि मेरे स्थान पर तुम होती तो तुम नहीं करती यह सब?''

''यू आर आव्सम स्नेहा,'' स्नेहा की बात सुन कर राखी के चेहरे पर मुस्कराहट आ गयी थी.

''कुछ भी कहो तुम्हारी सहेली है बहुत समझदार राखी,'' उसके पति तारीफ़ किये बग़ैर न रह सके.

अब स्नेहा उससे रोज़ फ़ोन पर बात कर लिया करती, कहती तुम इस वक़्त दुबई में अकेले हो वह भी एक कमरे में बंद इसलिए मेरी ज़िम्मेदारी बनती है कि मैं तुम्हारा ख्याल रखूं. कितनी अच्छी हो तुम स्नेहा, राखी ने उस से अपनी पारिवारिक एवं निजी बातें भी साझा कर ली थीं. राखी ने दिल खोला तो स्नेहा का मौन मुखरित हुआ और बरसों से अपने अंतस में छुपे उद्गार दोनों सखियों ने साझा कर लिये. सात दिन चुटकियों में बीत गए और बेटी का टेस्ट भी निगेटिव आ गया. दो दिन बाद की एमिरेट्स की फ्लाइट बुक की और अब स्वदेश लौटने की तैयारी.

''होटल से चेक आउट का क्या समय है राखी?'' स्नेहा का प्रश्न था.

''है तो बारह बजे पर रात नौ बजे की फ्लाइट है इसलिए उन से थोड़ा समय बढ़ाने की रियायत मांग लेंगे.''

''ऐसा करो मेरे घर आ जाओ यहीं से हम तुम्हें एयरपोर्ट छोड़ देंगे.''

''अरे क्यों परेशान होती हो ?''

''कुछ परेशानी नहीं बल्कि मज़ा आयेगा, तुम दुबई बार-बार थोड़े न आओगी.''

''ठीक है आ जायेंगे.''

अपने सूटकेस लेकर राखी सपरिवार पुनः स्नेहा के घर पहुंच गयी थी. स्नेहा की बातों एवं घर के रख-रखाव को देख कर राखी समझ गयी थी कि स्नेहा कम खर्च़ में अच्छा घर संभाल लेती है. उसके मायके के मुकाबले ससुराल उतना संपन्न नहीं. दुबई के रहन-सहन को मेनटेन करने में बहुत सामंजस्य बैठाना पड़ता है. कहने को टैक्स फ्री है यहां, लेकिन जो कमाते हैं सब यहीं खर्च़ हो जाता है स्नेहा राखी को यहां के खर्च़ों के बारे में बताने लगी थी.

राखी मन ही मन सोच कर आश्चर्यचकित थी कि करीब तेईस वर्ष पूर्व जो सहेली स्वयं कार ड्राइव कर उसके घर आया करती थी, जिसने शॉपिंग के समय कभी मोल-भाव नहीं किया था, जिसे जो पसंद आ जाए झट से खरीद लिया करती थी. वह स्नेहा आज रुपये बचाने की बातें कर रही है.

बातों का सिलसिला जारी था और तभी राखी ने बातों का रुख बदलते हुए कहा, ''याद है स्नेहा मैं विवाह पूर्व जिस इंडस्ट्री में नौकरी किया करती थी वहां तुमने भी अप्लाई किया था. वहां मैंने अपने डिप्टी ज़नरल मैनेज़र से तुम्हें नौकरी देने के बारे में बात की थी. उन्होंने तुम्हारे बायोडेटा में तुम्हारे पिता के कामकाज उनके पद आदि के बारे में पढ़ा था. तब वे मुझे बोले कि तुम्हारी सहेली को नौकरी की आवश्यकता नहीं. उसका परिवार आर्थिक रूप से बहुत संपन्न है इसलिए वह यहां मेहनत करेगी इस बात पर मुझे शक है. उसे काम देने के बाद मालूम हो कि हम उसे ट्रेनिंग देने में अपना समय बर्बाद करें और वह एक ही साल में नौकरी छोड़ कर चली जाए.''

''उफ्फ्फ ! कितने पूर्वाग्रह बना लेते हैं लोग स्नेहा धीरे से बुदबुदाई. हां, तुम्हारा कहना सही है विवाह पूर्व हम छोटे से क़स्बे में रहा करते थे. वहां पापा को सब नाम से ही पहचानते हैं इसलिए भी शायद मुझे वह नौकरी न दी गयी हो. लेकिन सही मायने में यह ग़लत है.'

(शेष भाग पेज ८० पर देखें...)

कविताएं

एक पिता

राजेश पाठक

अच्छी-बुरी सभी परिस्थितियों में
लुटा देता है सर्वस्व,
वह टूटता रहता है शनैः-शनैः
संतानों की प्रगति वास्ते
जैसे अतिशय शीत व अतिशय उष्णता से
टूटता रहता है पहाड़
और इस तरह धीरे-धीरे पूरा टूटकर
बना जाता है सुगम व सरल रास्ता.
पिता भी सब कुछ खोकर
बनाता है सुगम रास्ता
अपनी संतानों के लिए
पिता पहाड़ होता है...
ग़रीब के बक्से में होता है सोना-चांदी
और ऐसी ही कुछ मूल्यवान वस्तुएं
पर होते हैं स्मृतियों के गोल-गोल मोती
कुछ फटे-पुराने, अधजले पोशाक भी
जिनसे जुड़ी होती हैं स्मृतियां बाप-दादा की
आनेवाली पीढ़ियों को कि
यही गर्म कपड़े पहना करते थे.
उनके दादा-दादी ठंड के मौसम में
जूते, चश्मे और भी बहुत कुछ
खोला जाय तो, ग़रीब के बक्से में
छिपी होती हैं परिवार की धरोहर
वर्ष में एकाध बार बक्सों को खोलकर
उसे उलट-पुलटकर ताज़ा की जाती हैं
पुरातन स्मृतियां.
ग़रीब का स्मृतियों से जुड़ाव
और उस जुड़ाव से विभोर होता मन
ही होता है सबसे बड़ा धन
वह जीवित रहता है
उन स्मृतियों के साथ बिना विद्वेष के.

मैं

गांव चाहता है बची रहे संवेदना
बचा रहे भोलापन व अपनापन भी,
बची रहे पुरखों की विरासत
बचे रहें दो जोड़े बैल और
बची रहे कुछ धुर ही सही,
पर उपजाऊ ज़मीन
गांव नहीं चाहता
पूरा का पूरा शहर बनना
कि उसकी उपजाऊ ज़मीन पर
उगने लगें मकान की फ़सलें
वह चाहता है बची रहें संवेदनशील नस्लें
गांव को पूरा का पूरा शहर बनाने की कवायद,
ठीक वैसे ही है
जैसे कोई मां-बाप थोप जाते हैं
अपने बच्चों के माथे पर
अपनी महत्वाकांक्षाओं के बोझ
बिना उनकी क्षमता, रुचि व प्रकृति के जाने.

सहायक सांख्यिकी पदाधिकारी, जिला सांख्यिकी कार्यालय, गिरिडीह, झारखंड-८१५३०१

लघुकथा

मन का सौंदर्य

पूजा गुप्ता

अंकिता सांवले रंग की है और औसत नैन-नक़्श परंतु गृहकार्य में पूर्ण दक्ष महिला है. अपने घर में सबकी चहेती अंकिता जाने क्यों सुबह से उदास थी, किसी से बात भी नहीं कर रही, बस चुपचाप अपने काम में लगी हुई थी. उसका पति मनीष उससे कई बार पूछ चुका था, 'अंकिता क्या बात है, आज तुम इतनी परेशान क्यों हो? लेकिन अंकिता कुछ नहीं बोलती, बस मन ही मन कल की बातें सोचने लगती है. कल उसके बेटे की जन्मदिन की पार्टी थीं. पार्टी शानदार थी, सभी रिश्तेदारों और जानने वालों को बुलाया गया था. केक कटने का समय हुआ तो अंकिता के नाम की पुकार मची. केक लेने के लिए अंदर जाती हुई अंकिता के कानों में कुछ आवाज पड़ी अपना नाम सुनकर वह रुक सी गयी.

सीमा काकी बोल रही थी, 'कहां तो मनीष और कहां यह अंकिता, मनीष की मां ने रिश्ता करते हुए जरा भी नहीं सोचा दोनों साथ में कैसे लगेंगे?'

तब कविता काकी बोली, 'बात तो तुम सही कह रही हो बहन, ज़रा इसका रंग तो देख लेती.'

अंकिता यह बातें सुनकर बहुत परेशान हो गयी और सोचने लगी, 'क्या वास्तव में मैं इतनी बुरी हूँ, इतनी ख़राब लगती हूं अंकित के साथ?'

तभी से यही सब बातें उसके दिल में बैठी हुई थी, मनीष को बताए भी तो क्या बताएं, अपनी स्वयं की बुराई कैसे करे अपने पति से बस इसीलिए चुप थी.

उधर अंकिता के व्यवहार से परेशान मनीष, अपनी मां से जाकर पूछता है, 'कुछ बात हुई है क्या मां, अंकिता का मूड ठीक नहीं है?'

मां भी अनभिज्ञता से कहती है, 'बेटा मुझे तो कुछ नहीं मालूम, जाकर पूछती हूं.'

मां अंकिता के पास जाकर प्यार से उससे पूछती है कि क्या हुआ बेटी, तू इतनी गुमसुम सी क्यों है?

पहले तो अंकिता कुछ नहीं बोलती, लेकिन मां के बार-बार पूछने पर अंकिता रोने लगती है और हिचकियों के संग ही मां से कहती है 'मां जब मैं सुंदर नहीं थी तो आपने इनसे मेरी शादी क्यों की, आज सभी लोग मेरे संग इनका भी मज़ाक़ बनाते है.'

मनीष जो अब तक कमरे के बाहर से सब बातें सुन रहा था, अंदर आते हुए हैरानी से पूछता हैं, तुमसे यह बातें किसने कहीं?

मां भी बोलती है — बेटा हमने तो कभी ऐसा कुछ नहीं सोचा, तुम्हारे मन में ये बातें आयी कहां से और अगर किसी ने कुछ कहा है तो बताओ मुझे?

अंकिता रोते हुए उन्हें जन्मदिन पार्टी के दौरान सुनी सभी बातों को बता देती है.

तब मां कहती है, 'बेटा तुम तो हमारे घर की लक्ष्मी हो, मैंने तुम्हारे गुणों को देखकर ही तुम्हें अपने बेटे के लिए पसंद किया था और रंग-रूप का क्या है एक दिन ढल जाता है'

मनीष भी अंकिता को चुप कराता है और कहता है, 'अंकिता क्या कभी मां ने या मैंने तुम्हें कुछ कहा है? रंग-रूप से कुछ नहीं होता, इंसान का व्यवहार अच्छा होना चाहिए और लोगों की बातों में मत आओ, लोगों का तो काम ही कहना होता है. मेरे लिए इस संसार में तुमसे ज़्यादा सुंदर और कोई नहीं है, सिर्फ़ एक को छोड़कर.'

मनीष की बात सुनकर अंकिता उसका मुँह देखने लगती है.

तब तक मनीष अपनी मां और उसे गले लगाता हुआ हंसते हुए कहता है मेरी मां और मेरी बीवी दुनिया की सबसे सुंदर औरत है.

उसकी बात सुनकर अंकिता बहुत ख़ुश हो जाती है, अब उसके मन से सभी वहम मिट चुके थे.

मिर्जापुर, उत्तर प्रदेश
फोन : ७००७२२४१२६

आमने-सामने (१)

'बोनस में मिली ज़िंदगी'

✍ डॉ. रीता दास राम

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने-सामने'. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नी सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रजाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी, राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान 'बातिश', डॉ. शिव ओम 'अंबर', कृष्ण सुकुमार, सुभाष नीरव, हस्तीमल 'हस्ती', कपिल कुमार, नरेंद्र कौर छाबड़ा, आचार्य ओम प्रकाश मिश्र 'कंचन', कुंवर प्रेमिल, डॉ. दिनेश पाठक 'शशि', डॉ. स्वाति तिवारी, डॉ. किशोर काबरा, मुकेश शर्मा, डॉ. निरुपमा राय, सैली बलजीत, पलाश विश्वास, डॉ. रमाकांत शर्मा, हितेश व्यास, डॉ. वासुदेव, दिलीप भाटिया, माला वर्मा, डॉ. सुरेंद्र गुप्त, सविता बजाज, डॉ. विवेक द्विवेदी, सुरभि बेहेरा, जयप्रकाश त्रिपाठी, डॉ. अशोक गुजराती, नीतू सुदीप्ति 'नित्या', राजम पिल्लै, सुषमा मुनींद्र, अशोक वशिष्ठ, जयराम सिंह गौर, माधव नागदा, वंदना शुक्ला, गिरीश पंकज, डॉ. हंसा दीप, कमलेश भारतीय, अजीत श्रीवास्तव, डॉ. अमिताभ शंकर रायचौधरी, श्याम सुंदर निगम, देवेंद्र कुमार पाठक, आनंद सिंह, डॉ. इंद्र कुमार शर्मा, आचार्य नीरज शास्त्री, ताराचंद मकसाने , एम. जोशी हिमानी और अरविंद 'राही' से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है डॉ. रीता दास राम व भगवती द्विवेदी की आत्मरचनाएं.

कुछ कहने के लिए शब्द जुटाना वह भी अपने बारे में कठिन है जबकि चीज़ें इतनी साफ़ आंखों के सामने हैं जैसे अभी-अभी घटा हो. जब-जब स्मृतियां अतीत की टोह लेती हैं थोड़ी-थोड़ी पूर्ण होती जाती हूं. मैं ज़िंदा हूं और लेखन कार्य में व्यस्त भी, यह अच्छा लगता है.

चार बहनों, एक भाई और माता-पिता के परिवार में सबसे छोटी मैं, बचपन से मन की बात बहुत खुलकर किसी से कह नहीं पाती. खेल में हिस्सा लेना, कक्षा में प्रथम आना, एक आध पक्की दोस्ती के सिवाय मेरी कोई पूंजी नहीं थी. पिता बिहार जमालपुर के पास मुंगेर के निवासी हैं जिन्हें ३ साल की उम्र में गांधीजी ने अपने गोद में उठाया था कुछ यादें मन जुड़ा जाती हैं. 'दास' बिहारी में भी होते हैं यह बात मुझे पिता से बाद में पता चली. मां क्रिश्चन (कनवर्टड) मध्यप्रदेश की रहवासी थीं. जब जाति संबंधी जिज्ञासाएँ पनपने लगीं और मैंने मां से पूछा तब पता चला था नानाजी तिवारी

शिक्षा : एम.ए., एम फिल,पी.एच.डी. (हिंदी) मुंबई विश्वविद्यालय.
जन्म :- १९६८ नागपुर.
कविता संग्रह : 'तृष्णा'(२०१२); 'गाली मिट्टी के रूपाकार' (२०१६)
कहानी संग्रह :- १.'समय जो रुकता नहीं' (२०२१).
संस्मरण : 'नया ज्ञानोदय','भवन्स नवनीत' एवं 'हिंदीनेस्ट' ब्लॉग में संस्मरण प्रकाशित.
स्तंभ लेखन :- मुंबई के अखबार 'दबंग दुनिया' २०१५ में और 'दैनिक दक्षिण मुंबई' २०१६ में स्तंभ लेखन.
साक्षात्कार : हस्तीमल हस्ती 'अनभै' पत्रिका में प्रकाशित; 'डॉ. हूबनाथ पांडेय' का साक्षात्कार 'बिजूका' ब्लॉग में; डॉ. असग़र वजाहत से फणीश्वरनाथ रेणु की जन्मशती पर संवाद आचार्य पथ एवं माटी पत्रिका में प्रकाशित.
सम्मान : 'शब्द प्रवाह साहित्य सम्मान' २०१३, तृतीय स्थान 'तृष्णा' को उज्जैन; 'अभिव्यक्ति गौरव सम्मान' – २०१६ नागदा में 'अभिव्यक्ति विचार मंच' नागदा की ओर से २०१५-१६; 'हेमंत स्मृति सम्मान' २०१७ गुजरात विश्वविद्यालय अहमदाबाद में 'गीली मिट्टी के रूपाकार' को 'हेमंत फाउंडेशन' की ओर से; 'शब्द मधुकर सम्मान-२०१८' मधुकर शोध संस्थान दतिया, मध्यप्रदेश, द्वारा 'गाली मिट्टी के रूपाकार' को राष्ट्र स्तरीय सम्मान; साहित्य के लिए 'आचार्य लक्ष्मीकांत मिश्र राष्ट्रीय सम्मान' २०१९, मुंगेर, बिहार से; 'हिंदी अकादमी, मुंबई' द्वारा 'महिला रचनाकार सम्मान' २०२१ की घोषणा.
कवियों की संग्रहीत कविता संकलन में मेरी कविताओं को स्थान : गौरैया (मध्यप्रदेश), शब्द प्रवाह, वार्षिक काव्य विशेषांक (मध्यप्रदेश), समकालीन हिन्दी कविता भाग १ (आरा, बिहार); साहित्यायन (मध्यप्रदेश) ; मुंबई की कवयित्रियां (मुंबई); चिंगारियाँ (मध्यप्रदेश)
वेब-पत्रिका/ई-मैगज़ीन/ब्लॉग/पोर्टल : 'पहचान' २०२१,'मृदंग' अगस्त २०२० ई पत्रिका,'मिडियावाला' पोर्टल 'बिजूका' ब्लॉग व वाट्सप, 'शब्दांकन' ई मैगजीन, 'रचनाकार' व 'साहित्य रागिनी' वेब पत्रिका, 'नव प्रभात टाइम्स.कॉम' एवं 'स्टोरी मिरर' पोर्टल, समूह आदि में कविताएँ प्रकाशित.
रेडिओ : वेब रेडिओ 'रेडिओ सिटी' के कार्यक्रम 'ओपेन माइक' में कई बार काव्यपाठ एवं अमृतलाल नागरजी की व्यंग्य रचना का पाठ.
प्रपत्र प्रस्तुति : एस.आर.एम. यूनिवर्सिटी चेन्नई, बनारस यूनिवर्सिटी, मुंबई यूनिवर्सिटी एवं कॉलेज में इंटेरनेशनल एवं नेशनल सेमिनार में प्रपत्र प्रस्तुति एवं पत्र-पत्रिकाओं में आलेख प्रकाशित.

और नानी दुबे परिवार से थे. कुछ सामाजिक मुद्दों और अंग्रेज़ों के दबाव से उन्हें क्रिश्चनिटी अपनानी पड़ी और उसके बाद उन्होंने कभी धर्म परिवर्तन की नहीं सोची. पिता दलित हैं लेकिन आज भी मुझे अपने बारे में दलित बताते ही लोगों की शंकित निग़ाहों का सामना करना पड़ता है. नानाजी के खुले विचारों से मां-पिताजी को शादी की सहमति मिली. शादी कोर्ट मैरिज हुई.

समाज जैसे हम बच्चों के लिए थोड़ा अलग था. मुझसे पूछा जाता 'तुम दास हो फिर तुम चर्च क्यों जाती हो?' हम बचपन में छुट्टियों में अक्सर नानी के घर जाया करते और मौसी, मामा जी सभी के साथ चर्च भी जाते, मास अटेंड करते. घर में दुर्गा पूजा, दीवाली मनाते. पापा ने ख़ुद कभी नहीं कहा कि हम हिंदू हैं. किसी चीज़ या रस्म को मानने या न मानने के लिए कभी कोई ज़ोर नहीं दिया. हम बच्चे अलग-अलग देवी देवताओं में आस्था बना बैठे. लोगों की एक तिर्यक दृष्टि जो हम पर पड़ती और खुसुर-पुसुर में तब्दील हो जाती. घर में रस्म-रिवाज़ों के बंधन से विचारों का खुलापन लोगों के लिए आश्चर्य का विषय था और हमारे लिए गॉड गिफ़्ट. हम बिना किसी जाति धर्म या रस्म-रिवाज़ को मानने के दबाव में आए अपनी शिक्षा को हासिल करते आगे बढ़ने लगे.

शादी के लिए पापा ने धर्म और जाति का कोई दबाव नहीं रखा. यू.पी. साइडर, मराठी, बंगाली परिवार में बहनें व भाई और मैं बिहारी परिवार में ब्याही गयी. बहुत तसल्ली के साथ कह सकती हूं कि शादी के बाद भी किसी बहन या भाभी के परिवार या रिश्तेदारों में भी कभी जाति धर्म को लेकर किसी की मानसिकता अलग नहीं हुई, ना ही किसी ने ऐसी-वैसी बातों का जिक्र ही किया. आज भी मेरे मन और घर के मंदिर में सभी भगवान के साथ ईसा मसीह की मूर्ति है जबकि बचपन में जब मैं तीन साल की थी मेरे मुंह से 'अल्लाह' और मम्मी को 'अम्मी' बोलना चलता रहा था जिसे पापा ने मुझे उच्चारण की सही समझ करा कर मम्मी

बोलना सिखाया. इस घटना से किसी मुस्लिम से संबंधित होने का कोई सरोकार नहीं था.

मुझे आज महसूस होता है, पापा और मम्मी ने कितना बड़ा उदाहरण रखा,जो १९६० में इंटरकास्ट लव-मैरिज की सोची. आज भी वे कुछ घंटे भी दूर नहीं रह पाते. मैं देख रही हूं प्यार बुढ़ापे में साथ रहने की एक बड़ी तसल्ली बनकर सामने आता है.

स्कूल में होनहार विद्यार्थी की गिनती में मेरा नाम रहा. कल्चरल प्रोग्राम और स्पोर्ट्स में भाग लेती और जीतती भी. स्कूल से कॉलेज़ तक पहुंची. समाज बदला हुआ ही था. क़िताबों में पढ़ी छुआ-छूत की बातें मुझे नज़र नहीं आयी क्योंकि मैं शहर में थी शायद गांव का माहौल अलग हो. दोस्त भी अच्छे मिले. कभी किसी से भेदभाव का व्यवहार नहीं मिला. मानवता और इंसानियत पर मेरे विश्वास ने जगह लेनी शुरू की. घर में साहित्यिक माहौल इतना ही था कि पापा कभी कभार कविता सी पंक्तियां बोल लेते थे और उन्हें साहित्यिक उपन्यासों में रुचि थी. नवीं कक्षा में आते-आते मैं शेर और शायरी में रुचि लेने लगी. तीन-चार लाइनें पंक्तिबद्ध लिखने लगी. ग्यारहवीं में कुछ ग़ज़लें और बी.ए. पहले साल में कुछ शब्द बंधते पहली कविता लिखी. उसके बाद रुकना मुश्किल था. लिखती और छुपा कर रखती. कॉलेज़ मैगजीन में सभी दोस्तों के कुछ ना कुछ देने को देखते हुए मैंने भी अपनी ग़ज़ल छपने के लिए दी, वह छप गयी. घर में पता चला. मां से बहुत डांट पड़ी, 'लिखना है तो मां पर लिखो, पिता पर लिखो, यह क्या ग़ज़ल लिखी है, यह कोई तुम्हारी प्रेम समझने की उम्र है?' ख़ैर, मैंने लिखना तो बंद नहीं किया.

गर्मियों की छुट्टियों में बड़ी बहनों को गुलशन नंदा, रानू, शर्लक होम्स को पढ़ते देखा करती थी. मेरी निग़ाह पापा द्वारा पढ़ी जा रही पुस्तक पर पड़ती. पापा जब पुस्तक रख किसी काम में लगे होते तो मैं उनकी पुस्तक लेकर पढ़ती. तुलनात्मक दृष्टि में मुझे यह पुस्तक, बहनों द्वारा पढ़ने वाली पुस्तक से अच्छी लगती. पढ़ते हुए लगता,पढ़ती ही चली जाऊं. पापा ने देखा और कहा, 'बेटा जब थोड़ी और बड़ी हो जाना तो इसे पढ़ना, अभी कुछ और पढ़ो.' दूसरी क़िताबों में मन नहीं लगता. इस तरह पापा की पुस्तकों में मैंने सबसे पहले 'वयं रक्षाम' पढ़ी, 'फिर मनुष्य के रूप'.बी.ए. के सिलेबस में 'चित्रलेखा', 'शंबूक' पढ़ने ने साहित्यिक रुचि को और बढ़ा दिया. फिर 'ययाति', 'आवारा मसीहा', 'क्या भूलूं क्या याद करूं', जैसी पुस्तकें पढ़ीं. अमृता प्रीतम की कहानियां मुझे अच्छी लगीं. मेरी रुचि शायद पापा ने ताड़ ली थी. दसवीं कक्षा में विज्ञान और गणित में सबसे ज़्यादा नंबर आने के बाद भी मुझे आर्ट्स लेने को कहा और विषय के चुनाव में हिंदी लिटरेचर पर ज़ोर दिया. सायकोलॉजी, सोशयोलॉज़ी और लॉज़िक अन्य विषय में थे. वकालत पढ़ने की इच्छा मेरे हिंदी मीडियम होने की वजह से धरी की धरी रह गयी. ख़ैर, बी.ए. के बाद एम. ए., एम फिल फिर लेक्चरार-शिप का मन बनाया.

बी.ए. होते न होते मेरे लिए रिश्ता आया. पापा का रिटायरमेंट दो साल में, भाई को कोई जॉब नहीं, हम बहनें शादी लायक, सारी स्थिति मेरे सामने, प्रतिकूल लगी. सबसे बड़ी बहन की शादी हो चुकी थी, उससे छोटी की तुरंत ही हुई थी. मेरे से बड़ी बहन लव-मैरिज की चाहत में शादी के लिए समय चाहती थी और यहां मेरे शादी की लड़के वालों की ओर से जल्दी मची थी. रोष और दुख के साथ शादी के लिए हां कहना पड़ा. एम.ए. पहला साल पूरा होते-होते शादी हो गयी. लिखना, पढ़ना किनारे हो गया. घर-गृहस्थी के चक्कर ने सोचने के लिए समय नहीं दिया. साल बाद बेटी हो गयी. पति को मेरा नौकरी करना पसंद ना था.

बेटी के दो साल की होते-होते दुर्घटना घटी. मैं जल गयी २७ प्रतिशत और थर्ड डिग्री बने. एक महीने तक, डॉक्टर 'ख़तरे से बाहर नहीं हूं' बताता रहा. हालत संभली, तीन महीने हॉस्पिटल में, पूरी पट्टियों के साथ चलने की कोशिश करती. जब भी चलती पट्टियां खून से लथपथ हो जातीं. डिस्चार्ज हो तीन महीने घर में बेड पर रही. छह महीने बाद घाव पूरे स्कार के साथ ठीक हुए. लगा ज़िंदगी बोनस मिली है. त्वचा खींचने लगी, बर्न पेशेंट के लिए इचिंग नॉर्मल है. साल गुज़रते, चलने लगी. एक जगह खड़ी रहने पर ठीक हुए घाव की त्वचा का रंग बदलकर गाढ़ा होता हुआ जामुनी हो जाता और पैरों में कांटे से चुभने लगते. मैं खड़े होते हुए भी पैर हिलाती रहती. इस तरह ठीक से सीधे खड़े होने में साल दो साल लग गये. मन तो बेचैन था कहां

ठहरता. बच्ची को कॉलोनी के फैन्सी ड्रेस कॉम्प्टीशन में हिस्सा दिलाती और ख़ुद ही उसकी ड्रेस तैयार करती. कभी नर्स, कभी जेपनीज़ गर्ल, तो कभी नन, और तो और विवेकानंद भी बनाया. स्पोर्ट्स, कराटे, डांस भरत-नाट्यम उसे कई क्लासों में डाला. ख़ुद भी डांस में भाग लिया, मंच पर गाया, स्विमिंग सीखी, फ़ेब्रिक और ऑइल पेंटिंग की, इंग्लिश स्पीकिंग की क्लास की. कविताएं भी लिखती रही.

बिटिया केज़ी में ही थी, मुझे चक्कर के साथ डबल विज़न आए. डॉक्टर ने कान में इन्फेक्शन कहकर महीने भर दवाई से इलाज़ किया पर कोई फ़र्क नहीं पड़ा. सुबह रोज़ आंख खुलते ही हर चीज़ डबल दिखायी देती. हमने डॉक्टर बदला. न्यूरोलॉजिस्ट ने सुनते ही सिटी स्केन की सलाह दी. ब्रेन में ब्लड क्लॉट निकला. डॉक्टर ने कई बातें पूछीं और सुझाव दिया, 'शांत रह कर घुटो मत, बोला करो, वरना कुछ दिनों में ख़ुद को पागलखाने में पाओगी.' पति से भी मुझसे बुलवाने की सलाह दी. एडमिट होने को कहा. डॉक्टर का कहना था, 'खड़े-खड़े डेथ हो सकती है या कुछ भी हो सकता है.' खैर, गंभीरता को देखते हुए ऐड्मिट हुई. आईवी लगाती नर्स ने बीमारी और प्रीस्कराइब दवाई के बारे में पढ़कर पूछा, 'ज़हर खायी थी क्या?' मैं उसे घूरती रह गयी. मेरे मना करने पर वो थोड़ी असहज हुईं, कहने लगी, 'तुम्हारे लिए डॉक्टर ने जो ट्रीटमेंट लिखा है! उसके कारण मैंने ऐसा पूछा.' मुझे अपनी बीमारी की गंभीरता का थोड़ा अंदाज़ा तो लग गया. पांच दिन एड्मिट रहकर घर आयी. एक महीना गुज़रा दोबारा डबल विज़न आए. फिर से सिटी स्कैन. ब्लड क्लॉट पहले सेरीबेलेम में था अब सेरीब्रम में निकला. लाइफ़ सेविंग ड्रग हमेशा के लिए चालू हो गयीं. डॉक्टर का कहना था 'ऐसे ब्लड क्लॉट बुढ़ापे में आते हैं, इसे २७ साल की उम्र में हो रहे हैं, यह रेयर केस है.' एक बार फिर बोनस में मिले ज़िंदगी के दिनों का एहसास हुआ. जीवन आसान न था, दवाइयों और उसके साइड इफ़ेक्ट के साथ जीने की कोशिश शुरू हुई.

डॉक्टर के जवाब दे देने के बावजूद बिटिया के छह साल बाद बेटा हुआ. बेटा दो साल का हो गया. मुझे लगने लगा, मैं क्या कर रही हूं? बच्चे पालना और घर संभालना क्या यही है ज़िंदगी? ड्रॉइंग की क्लास लेने और हिंदी की ट्यूशन लेने की सलाह मुझे दी गयी. गूंगे-बहरों के अध्यापक बनने हेतु बी-एड की सोची पर समय ने साथ नहीं दिया.

जीजाजी हुमांशू राव जो नागपुर नवभारत में एडिटोरिअल सेक्शन में सब-एडिटर की पोस्ट पर कार्यरत थे, उन्होंने मेरी कविताएं मांगी और स्तरीय होने पर ही चुनाव होने की बात की. मैंने दे दीं. सुखद अनुभूति थी कि मेरी पहली कविता १९९९ में 'नवभारत' अख़बार के दीवाली विशेषांक में प्रकाशित हुई. आगे भी कुछ टॉपिक पर विचार भी इसी अख़बार में प्रकाशित हुए.

घर और बच्चों के साथ मैंने इंदिरा गांधी ओपन यूनिवर्सिटी से आगे पढ़ने की इच्छा जाहिर की. नरेश (पति) का कहना, 'करना है तो मुंबई यूनिवर्सिटी से करो, इग्नू से तो कोई भी कर लेगा,' ने वाकई काम किया. मैंने करसपोडेंस कोर्स ज़्वॉइन किया. मटेरियल घर आया. दो महीने के लिए रुपारेल कॉलेज़, माटुंगा में शाम छह से आठ बजे तक क्लास होने लगी. इन कक्षाओं ने दुनिया बदल दी. अधिकतर नौकरी करते पढ़ने आए हुए या शादीशुदा औरतें ही कक्षा में थे, जिन्हें ख़ुद को अपग्रेड करना था. प्रोफ़ेसर मिले. स्टूडेंट मिले. साहित्यिक परिदृश्य मेरे लिए नया जीवन था. रुकावटों के बावजूद एम. ए. की परीक्षा दे पायी. पास हुई. गुरूजी रतन कुमार पांडेय ने एम. फ़िल. की सलाह दी. मैंने एम. फिल. में एडमिशन लिया. क्लास में कुल ग्यारह विद्यार्थी थे. मेरी पढ़ाई और कविता लिखना शुरू था. सहेली के कहने पर झिझकते हुए मैंने गुरुजी को अपनी कविता दिखाई. गुरूजी ने कविताओं को पढ़ा, आश्चर्यमिश्रित सराहना मिली, कहा, 'लिखती रहो, लिखना बंद मत करना.' ये शब्द मेरा उत्साहवर्धन करते रहे.

नरेश का दिल्ली ट्रांसफर हुआ. मुंबई में छह महीने बच्चों के स्कूल और अपने एम. फिल. की वजह से बच्चों के साथ अकेली रही. एम. फिल. में थीसिस के लिए सुरेंद्र वर्मा का 'मुझे चांद चाहिए' उपन्यास का मेरा ही था. उपन्यास पर बनी सीरियल पहले ही देख चुकी थी. उपन्यास की उत्कृष्टता मन मोह लिया. मेरे पसंदीदा उपन्यासों में एक और इजाफ़ा हुआ. परिदृश्य प्रकाशन में आलोचनात्मक किताब की तलाश में गयी थी. वहीं एक बुजुर्ग दुख है उनका नाम नहीं जानती ने कई किताबें दिखाने के बाद मेरे पढ़ाई

की पूछताछ की और पूछा, 'सुरेन्द्र वर्मा से मिली हो? उनके साक्षात्कार के बिना एम. फिल. की थीसिस कैसे होगी!' गुरूजी ने बताया था 'यह लेखक किसी से नहीं मिलते' मैंने उन्हें यही बता दिया. वे बोले, 'कौन कहता है किसी से नहीं मिलते? मैं नंबर देता हूं. फोन करो, वे विद्यार्थियों से बात करते हैं.' मैंने फोन किया. मेरी झिझक को सहेजते हुए सुरेंद्र वर्मा जी ने घर बुलाया. उनका साक्षात्कार लिया. कंधे तक लंबे केश, सफ़ेद कुर्ते-पाजामे में काला चश्मा लगाए आत्मविश्वास, जुनून, आदर्श, लेखकीय दृष्टि से भरे साहित्यकार को क़रीब से देखने, जानने, बोलने, सुनने की इच्छा पूरी हुई. यह मेरे लिए तसल्ली के साथ ख़ुशी देती घटना रही. मैं दो अध्याय गुरूजी को दिखाकर दिल्ली चली गयी.

एम. फिल. की थीसिस के बाक़ी अध्याय मैंने दिल्ली में रहकर लिखे. मुझे स्पाइन की टीबी हुई. दो महीने टोटल बेड रेस्ट. कुछ उठाने की भी मनाही, इंजेक्शनस और दवाइयों के बाद डेढ़ साल बाद में पूरी तरह स्वस्थ तो हो गयी लेकिन पहले-सी शारीरिक स्फूर्ति, चपलता को जैसे भीतर ही टोहने लगी. पुनः जीवन ही बोनस लगने लगा. महसूस करने लगी कि मौत के मुंह से हर बार आख़िर क्यों लौट आती हूं! गुरूजी के मार्गदर्शन से मुंबई आकर मैंने थीसिस सबमिट की.

दो साल दिल्ली की लायब्रेरी में कवियों की कविताएं पढ़ते गुज़रे. सुरेंद्र वर्मा की कृति को ढूंढती अचानक 'हंस' के दफ़्तर पहुंची. राजेंद्र यादव जी से मुलाकात हुई. कविता में मेरी रुचि जानकर उन्होंने मुझे अतिथि संपादक इब्बार रब्बी जो दूसरे कमरे में बैठे थे, के पास यह कहते हुए भेजा कि 'कविता के बारे में हमसे नहीं उनसे बात कीजिए.' मैं इब्बार रब्बीजी से मिली. उनके कहने पर दूसरी बार अपनी कविता दिखाने 'हंस' पहुंची.'१० साल की मेरी बेटी और चार साल का बेटा है' यह पता चलने के बाद उन्होंने मुझे गंभीरता से लेते हुए मेरी कविताएं पढ़ीं, कहा 'आपकी कविताओं में रहस्य है. अभी हंस में नहीं छप सकतीं. हां किसी अन्य पत्रिका में ज़रूर छप जाएंगी.' वहीं कृष्ण बिहारी सर से भी मुलाकात हुई.

मेरे दिल्ली रहते ही २००४ में गुरूजी की साहित्यिक पत्रिका 'अनभै' के पहले अंक का मुंबई में लोकार्पण हुआ. मेरी जिज्ञासा पर 'तुम्हारी कविताओं में संभावनाएं हैं' कह गुरूजी ने मेरी कविताएं मांगी. मेरी पांच कविताओं को पत्रिका के पहले अंक में गुरूजी ने स्थान दिया, यह मेरे लिए अत्यधिक हर्ष का विषय था. ट्रांसफ़र की वजह से हम वापस मुंबई आ चुके थे. मेरी एम. फ़िल पूरी हो गयी. २००७ के आसपास गुरूजी ने पीएचडी करने की सलाह दी. मैंने मना किया. सोचा, घर से निकलने से बच्चों पर नज़र रखना मुश्किल होगा. 'कथाबिंब' में भी मेरी कविताओं को स्थान मिला.

मैं कविताओं द्वारा 'अनभै' से जुड़ी रही. कई बार प्रकाशित हो चुकी कविताओं को देखते हुए गुरूजी ने कविता संग्रह प्रकाशित करने की बात कही. २०१२ में मेरा पहला कविता संग्रह 'तृष्णा' प्रकाशित हुआ. मुंबई यूनिवर्सिटी के प्रांगण में वरिष्ठ कवि सुधाकर मिश्र, प्रोफ़ेसर माधुरी छेड़ा, प्रो. अर्जुन चौहान, रोहिताश्व और गुरूजी रतन कुमार पांडेय जी के करकमलों से इसका लोकार्पण हुआ. उज्जैन से २०१३ में 'तृष्णा' को 'शब्द प्रवाह सम्मान' मिला. मेरी कविताओं को देश की विभिन्न पत्रिकाओं में स्थान मिलने लगा. 'दैनिक दक्षिण मुंबई' और 'दबंग दुनिया' अख़बारों के संपादक अभिलाष अवस्थी जी ने स्तंभ लेखन का अवसर दिया. यह एक अलग विधा की जानकारी और समृद्ध होना था.

२०१२ तक बिटिया ग्रेजुएट हो गयी थी और बेटा अच्छे नंबरों से दसवीं उत्तीर्ण हो चुका था. बच्चे बड़े और ख़ुद ही पढ़ाई में व्यस्त हो गये. खाली समय के कारण पीएचडी की इच्छा बलवती हुई. गुरूजी का मार्गदर्शन मिला. पीएचडी का इंटरव्यू हुआ. वेटिंग लिस्ट में नाम आया. कुछ दिनों बाद रज़िस्ट्रेशन और फिर शुरू हुई पढ़ाई, अच्छी लगने लगी. कई उपन्यास,संगोष्टियां, प्रपत्र पढ़ना, कहानी संग्रहों की समीक्षा करना, घंटों लायब्रेरी में बैठना, अच्छा लगता रहा. अंधेरा घिरने के डर से घर जाने का होश आता. कई थीसिस देखे, पढे. क़िताबें पढ़ीं. विदेशी लेखकों की कविताएं पढ़ीं. प्रेमचंद जयंती, मुक्तिबोध संगोष्ठी, अमृतलाल नागर सेमीनार आदि आदि गुनती, बिनती, लिखने का तरीक़ा देखती, मैं जाने क्या खोजती जो मिलता ही नहीं. विद्यार्थी नौकरी पाने की ख़ातिर पढ़ रहे थे और इसी रुचि के चलते उनकी दोस्ती बदलती रहती. सभी की अपनी मज़बूरी. सभी एक दूसरे को मदद करते आगे बढ़ते. २०१२ में शुरू की

जद्दोजहद २०१९ में पीएचडी अवॉर्ड हुई, जिसमें प्रो. हूबनाथ पांडेय सर के मार्गदर्शन का साथ भी अहम रहा. आज उनकी शोधपरक पत्रिका 'शोधावरी' से जुड़ना मेरे लिए नई जानकारियों से अवगत होना है.

'लमही' पत्रिका के संपादक विजय राय जी ने मेरी कविताओं को अपनी पत्रिका में स्थान देते हुए मेरा दूसरा कविता संग्रह निकालने की इच्छा जताई. यह मेरे लिए अत्यंत प्रसन्नता और गर्व की बात थी. २०१६ में लखनऊ में सभी आदरणीयों विजय राय, मंगलेश डबराल, नरेश सक्सेना, के हाथों 'गीली मिट्टी के रुपाकार' कविता संग्रह का लोकार्पण हुआ जिसे गुजरात यूनिवर्सिटी में २०१७ का 'हेमंत स्मृति राष्ट्रीय सम्मान' व २०१८ में दतिया मध्यप्रदेश से राष्ट्रीय 'शब्द मधुकर सम्मान' प्राप्त हुआ. कई साहित्यिक पत्रिकाओं में उसकी समीक्षा प्रकाशित हुई. आज हंस, नया ज्ञानोदय, शुक्रवार, पाखी, लमही, वागर्थ, उत्तरप्रदेश, चिंतनदिशा एवं कई पत्रिकाओं व संकलनों में कविताएं, कहानी संस्मरण व प्रकाशित लेख मुझे साहित्य के प्रति जिम्मेदारी का एहसास कराते हैं.

मुंबई में काव्य गोष्ठियों में आमंत्रित की जाती रही. जमालपुर रेलवे कारखाना में अनिमेष कुमार सिन्हा द्वारा सर्वप्रथम काव्यपाठ के लिए शहर से बाहर से निमंत्रण मिला. संगोष्ठी में वरिष्ठ लोगों से मुलाकातें होतीं, अच्छा लगता. सुरेंद्र मीणा के नेतृत्व में साहित्यिक गतिविधियों के लिए नागदा से 'अभिव्यक्ति गौरव सम्मान' मिला. पीएचडी के दौरान संतोष श्रीवास्तव के 'विश्व मैत्री मंच' की साहित्यिक संगोष्ठी के संग दुबई और इज़िप्ट जाना संभव हुआ. फ़ेसबुक में कई साहित्यिक गतिविधियों की झलकियां मिलती. फ़ेसबुक में फ्रेंड लिस्ट के साहित्य से जुड़े जो पहले व्यक्ति मुझसे मिलने मेरे घर आए वे वरिष्ठ कवि एवं पत्रकार विमल कुमार हैं, वह भी इसलिए कि मैंने उनसे कहा था, 'ये साहित्य से जुड़े दिग्गज लोग हम जैसों से नहीं मिलते.' विमल कुमार जी की पत्रिका 'स्त्री दर्पण' के संपादकीय टीम के रूप में सहयोग देते हुए 'स्त्री दर्पण' फेसबुक मंच से जुड़ना अच्छा लगा. शृंखलाओं के चलते वरिष्ठ कवि सविता सिंह से बहुत कुछ देखने, समझने सीखने को मिल रहा है.

सूरज प्रकाश सर द्वारा आमंत्रित घरेलू संगोष्ठी में रवींद्र कालिया, ममता कालिया, मधु कांकरिया, विश्वनाथ सचदेव, अचला नागर, स्वाती तिवारी एवं अन्य के साथ असगर वजाहत सर से मुलाकात हमेशा याद रहेगी. अशोक बिंदल सर ने चौपाल की जानकारी दी और वहीं कविता गुप्ता, हस्तीमल हस्ती एवं कई महत्वपूर्ण हस्तियों से मुलाकात का अवसर मिला. विभा रानी जी से साहित्य के नाटक विधा में अभिनय के विविध पहलुओं को क़रीब से देखने का मंचीय अनुभव मिला. मुंबई यूनिवर्सिटी के साहित्यिक कार्यक्रमों में मंगलेश डबराल, विष्णु खरे, विजय कुमार, हृदयेश मयंक, सविता सिंह, सुधा अरोड़ा, सूर्यबाला, अनूप वशिष्ठ, रोहिताश्व से मिलने का अवसर मिला. सभी का मार्गदर्शन व स्नेहिल आशीर्वाद मिलता रहा. लॉक डाउन के चलते ऑनलाइन कार्यक्रम ज़िंदा होने का एहसास कराते रहे. प्रसून लतान्त और कुमार कृष्णन के नेतृत्व में २०१९ में साहित्य के लिए 'आचार्य लक्ष्मीकांत मिश्र राष्ट्रीय सम्मान' मुंगेर, बिहार से प्राप्त हुआ.

२०२१ में वैभव प्रकाशन से मेरी तीसरी पुस्तक जो एक कहानी संग्रह है 'समय जो रुकता नहीं' आयी. असगर वजाहत, अनूप वशिष्ठ, गिरीश पंकज, संतोष श्रीवास्तव और सुधीर शर्मा द्वारा इसका ऑनलाइन लोकार्पण हुआ.

कविता, कहानी, स्तंभ लेखन, संस्मरण, साक्षात्कार, समीक्षात्मक लेख द्वारा रचनात्मक योगदान करते साहित्य से जुडते हुए कविता पाठ, संचालन, कहानी-पाठ, मंचीय नाट्य पठन भी किया. हर संपादक मेरे लिए महत्वपूर्ण रहे. जब-जब जिन्होंने कविताएं, लेख, संस्मरण मांगे मैंने अपनी क्षमतानुसार भेजे. समय का ख़्याल रखा. जब भी किसी वरिष्ठ ने मुझ पर विश्वास किया, मुझे कुछ साहित्यिक कार्य की जिम्मेदारी सौंपी, मैंने दिल से निभाई. मुझे सीखने मिला, समृद्ध हुई. साहित्य ने जीवन की उदासियों को सोखा, इससे मुझे वैचारिक तरलता मिलती रही है. यह मेरे लिए संजीवनी-सी है जिसने जीवन में ख़ुशियों भरी सांसें मुहैया करायीं. जीवन बोनस है, आशा करती हूं अभी भविष्य में बहुत कुछ प्रतीक्षित हो... ।

३४/६०३, एच. पी. नगर पूर्व,
वासीनाका, चेंबूर, मुंबई–४०००७४.
मो. : ९६१९२०९२७२.
ई मेल :- reeta.r.ram@gmail.com

आमने-सामने (२)

'ज़िंदगी की आख़िरी सांस तक मैं साहित्य को जीता रहूंगा'

भगवती प्रसाद द्विवेदी

अपनी आपबीती व संघर्षशीलता को पूरी ईमानदारी के साथ लिपिबद्ध करना तलवार की धार पर चलने जैसा ही जोखीम-भरा होता है. वैसे, अपनी रचनाओं के माध्यम से किसी-न-किसी रूप में खुद् को ही तो अभिव्यक्त करता आ रहा हूं. फिर भी,पीछे मुड़-मुड़कर जब-जब अतीत की ओर झांकता हूं, सहसा ये पंक्तियां जुबान पर आ जाती हैं —

ज़िंदगी! तूने मुझे क़ब्र से कम दी है ज़मीं
पांव फैलाऊं तो दीवार से सर लगता है.

मगर कशमकश और जद्दोजहद से लबरेज़ जीवन जीने का भी अपना ही मज़ा होता है-कभी नाव गाड़ी पर,तो कभी गाड़ी नाव पर!

मेरा जन्म बलिया जनपद (उत्तर प्रदेश) के पूर्वांचल के एक पिछड़े गांव दलछपरा में पहली जुलाई, १९५५ को एक निम्न मध्य वर्ग किसान परिवार में हुआ था. बाद में मैंने गौर किया कि वहां स्कूल के अभिलेख में हर विद्यार्थी की जन्मतिथि पहली जुलाई ही अंकित थी; क्योंकि प्रति वर्ष पहली जुलाई को ही नये सत्र की शुरुआत होती थी. जब मैंने अपनी जन्मकुंडली देखी तो उसमें मेरा जन्मदिन २६सितंबर, १९५५ अंकित था.

होश संभालने पर पता चला कि मेरी डेढ़ वर्ष की उम्र में ही मां दिवंगता हो चुकी थीं और मैं 'टूअर-टापर' का जीवन शिशुकाल से ही जीने को अभिशप्त था. दादी बताया करती थीं कि मेरे जन्म के पूर्व ही एक जटा-जूटधारी साधु ने अचानक प्रकट होकर मेरे जन्म, मां के निधन और मेरे नामकरण के साथ ही तेजस्वी होने की भी भविष्यवाणी कर दी थी. खैर, आख़िर भविष्यवाणी तो, पता नहीं, सच साबित हुई या नहीं, मगर मां की ममता से मैं ज़रूर वंचित हो गया. पिताजी के दूसरी शादी न रचाने के निर्णय से सौतेली मां के प्यार/दुत्कार से भी मैं वंचित ही रहा. परिवार का इकलौता पुत्र होने की वजह से दादी, बड़ी मां,बड़े पिताजी--सबकी आंखों का तारा था मैं और मातृहंता होने के बावजूद सबका भरपूर स्नेह-दुलार मुझे मिला. मगर वहां की चहुंओर व्याप्त अंधविश्वास और रूढ़ियों का भी आए दिन शिकार होता रहा.

तभी तो बचपन में कई भयंकर बीमारियों, भूत-प्रेतों और ओझा-सोखाओं की चपेट में आकर ज़िंदगी और मौत से किशोरावस्था तक जूझता रहा. परिवार के लोग सदा सशंकित रहते कि पता नहीं, कब तूफ़ान का कोई झोंका आकर एक ही झटके में खानदान के दीप को बुझा दे! मगर मैं कृशकाय सींकिया पहलवान ऐसा अड़ियल कि भभक-भभककर बुझते-बुझते अचानक जल उठता था. दादी मुझे एक पल भी अकेला नहीं छोड़तीं और अपने बगल में ही सुलाकर लोककथाएं, कहानियां और भजन आदि सुनाया करती थीं.

कभी मैं कहानी के पात्रों के साथ बहते हुए फफक-फफकर रो पड़ता, तो कभी तरह-तरह की कल्पनाओं में खो जाया करता था. भूत-प्रेत की कथाएं मुझे बेहद डराती थीं और मैं भयभीत होकर दादी की देह से चिपक जाता. अंतर्मुखी और भावुक तो था ही. परियों की दास्तान मुझे बेहद प्यारी लगती थी. शायद दादी की उन किस्म-किस्म की कथाओं से ही मेरे भीतर के बालमन में कल्पनाशीलता एवं साहित्य-लेखन का बीजारोपण हुआ हो.

दीदी कृष्णा से सर्वप्रथम मुझे अक्षर-ज्ञान मिला था. दीदी को स्कूल जाते हुए देखकर मैं भी मचल उठता था. अतः बहुत कम उम्र में ही गांव के प्राइमरी स्कूल में नंगे पांव जाने लगा था. रात में लालटेन या ढिबरी की रोशनी में कृष्णा दीदी बोल-बोलकर पाठ याद करतीं और मुझे लेटे-

लेटे ही उनके सबक कंठस्थ हो जाया करते थे. इसका लाभ यह हुआ कि आगे चलकर जब मैंने छात्रवृत्ति की परीक्षा दी तो उन तमाम सवालों को हल करने में कामयाब रहा, जिनको मैंने दीदी के मुंह से सुन रखा था, ...और एक बार वजीफ़ा मिलने का सिलसिला शुरू हुआ, तो वह अंत तक जारी रहा. गांव से रोज़ डेढ़ कोस दूर पैदल चलकर पचरूखा देवी इंटरकॉलेज, गायघाट से हाईस्कूल में विशेष योग्यता के साथ मैंने परीक्षा उत्तीर्ण की और मेरिटलिस्ट में मेरा नाम दर्ज हुआ. फिर तो राष्ट्रीय छात्रवृत्तिएम. एस-सी. (रसायन विज्ञान) की स्नातकोत्तर उपाधि मिलने तक मिलती ही रही.छात्रवृत्ति व ट्यूशन की बदौलत ही मेरी उच्च शिक्षा संभव हो पायी. दूसरी ओर, दीदी ऊंची कक्षा की कविताएं उच्च स्वर में रटतीं और मैं बिस्तर पर लेटकर कविताओं का आनंद लेते हुए उन्हें कंठस्थ कर लेता. अगले दिन जब सस्वर सुनाने लगता, तो सभी विस्मय-विमुग्ध रह जाते.

गांव के प्राइमरी स्कूल में खाली पांव जाते हुए पढ़ाई और मॉनिटरी करता रहा, सांस्कृतिक कार्यक्रमों का अगुवा बनता रहा और वहां के प्रधानाध्यापक स्वर्गीय रामप्रसाद जी पांडेय से जीवनभर काम आनेवाली आधारभूत शिक्षा ग्रहण करता रहा. उन्होंने मेरे बाबूजी को भी पढ़ाया था और मुझे भी. उस विद्यालय को ही उन्होंने आजीवन सेवाएं दी थीं तथा उनके समर्पित अध्यापन-श्रम का ही नतीजा था कि हर साल स्कूल का कोई-न-कोई मेधावी छात्र वजीफ़ा पाने में अवश्य कामयाब होता था. इसके लिए गरमी की छुट्टियों में भी नि:शुल्क पढ़ाने आ जाते थे और प्राइमरी स्कूल में ही मिडिल स्कूल की किताबें लाकर भाषा-गणित के सवाल हल करा दिया करते थे.

सुबह की प्रार्थना-सभा में मैं एक सहपाठी मित्र के साथ 'हे प्रभो! आनंददाता....' व 'वह शक्ति हमें दो दयानिधे!' का गायन आगे-आगे करता तथा पीछे-पीछे सभी छात्र-छात्राएं दोहराया करते थे. गुरुजनों के मार्गदर्शन की बदौलत ही वार्षिक सांस्कृतिक प्रतियोगिताओं में मैंने ब्लॉक स्तर पर, जिला स्तर पर और कमिश्नरी स्तर पर भाग लेकर शील्ड एवं बहुत सारे पुरस्कार जीते थे.

उन दिनों गांव में नवयुवक मंगल दल का गठन ग्राम तथा खेत-खलिहानों की सुरक्षा के लिए हुआ था, जिसका पुस्तकालय मेरे बाबूजी की देखरेख में घर की एक कोठरी में चलता था. मैं रोज़ एक पुस्तक लेता और दिनभर में पढ़ डालता था. फिर तो गांव के सारे दोस्त 'पढ़ाकू' कहकर चिढ़ाने लगे थे.

पांचवीं के बाद गांव से एक कोस की दूरी तय करके जूनियर हाईस्कूल, रेवती में दाखला लिया था. वहां के हेडमास्टर भी बाबूजी को पढ़ा चुके थे. पिताजी पहले अध्यापन में, फिर बीजगोदाम की नौकरी में, तत्पश्चात आयुर्वेदिक वैद्यगिरी में और अंततः खेती-गृहस्थी में आ भिड़े थे. बड़े पिताजी की भी कंपनी बंद हो जाने पर वे गांव आ गये थे और परिवार की रोज़ी-रोटी की समस्या मुंह बाये खड़ी हो गयी थी.

आय के स्रोत का सोता सूख जाने की वजह से खेती-बारी के बावजूद अभावग्रस्तता व संघर्षशीलता का दौर शुरू हो चुका था. लिखने की विधिवत शुरुआत मिडिल स्कूल से ही हुई थी. वहां हर शनिवार को बालसभा हुआ करती थी, जिसमें हर छात्र को कुछ-न-कुछ सुनाना होता था. कोई चुटकुला सुनाता, तो कोई पाठ्यपुस्तक से कविता. मैंने एक कहानी लिखी और डरते-डरते बालसभा में सुनाने का साहस कर डाला.

साथियों ने खूब तालियां बजायीं. शिक्षक ने पूछा, 'किसकी कहानी है यह?'

मैंने हाथ जोड़कर कहा था, 'गुरुजी,मैंने ही कोशिश की है.' उन्होंने पास बुलाकर पीठ थपथपायी थी,'अच्छी है, ऐसी कोशिश आगे भी करते रहना.' फिर तो सिर पर पढ़ने और लिखने की जो धुन सवार हुई, उसने नशा का रूप धारण कर लिया. आमतौर पर कविता से लेखन की शुरुआत हुआ करती है, मगर मेरा लेखन कहानी से आरंभ हुआ था और बाद में कविता लिखना शुरू किया था. अंग्रेज़ी के अध्यापक पं. जगन्नाथ पांडेय और संस्कृत के शिक्षक आचार्य शुकदेव मिश्र ने काफ़ी प्रोत्साहित किया. उन्हीं दिनों बाल-कहानियों की एक पांडुलिपि बना ली थी — 'चित्ताकर्षक कहानियां' शीर्षक से. मगर शिक्षकों ने समझाया था, 'साहित्य के क्षेत्र में ऐसा उतावलापन उचित नहीं है.पहले पत्र-पत्रिकाओं में छपो,अपनी पहचान बनाओ, तब आगे चलकर संग्रह के प्रकाशन के बारे में सोचना.' मैंने एक कहानी भारत

सरकार के प्रकाशन विभाग की पत्रिका 'बालभारती' को भेज दी थी. संयोग से वह कहानी न सिर्फ़ 'बालभारती' में 'वरदान' शीर्षक से प्रकाशित हुई, बल्कि मनीआर्डर से पैंतीस रुपये का पारिश्रमिक भी प्राप्त हुआ.उस दिन मुझे सबसे ज्यादा खुशी हासिल हुई थी। फिर तो गांव वालों ने 'पढ़ाकू' की ज़गह अब 'कवि जी' कहना शुरू कर दिया था.

आगे चलकर प्रकाशन विभाग ने जब 'बालभारती की प्रतिनिधि कहानियां' संकलन प्रकाशित किया, तो मेरी वह कहानी संकलन की पहली कहानी बनी. उन्हीं दिनों 'भोजपुरी कहानियां' (वाराणसी) में 'मजबूरी' शीर्षक से बड़ों के लिए मेरी कहानी आयी. फिर तो धड़ाधड़ बच्चों-बड़ों के लिए देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित-प्रशंसित होने लगीं. मेधावी होने का नुकसान यह हुआ कि मुझे न चाहते हुए भी विज्ञान संकाय में जाना पड़ा, क्योंकि अभिभावक की ऐसी ही मरजी थी और लाभ यह हुआ कि अनावश्यक विस्तार के बजाय 'टु द प्वाइंट' में मेरी आस्था दृढ़ हुई.

यों तो बचपन से ही अंतर्मुखी रहा हूं, पर यदा-कदा शरारतें भी कर दिया करता था. ऐसी ही एक शरारत मैंने दोस्त की किताब फाड़कर की थी,मगर मेरी शरारत ने मित्र के जीवन की दिशा ही बदल दी थी. आगे चलकर मेरी वह कहानी 'एक शरारत:एक नसीहत' शीर्षक से किशोरों की पत्रिका 'पराग' में प्रकाशित हुई थी.

घटना उन दिनों की है, जब मैं सातवीं कक्षा का विद्यार्थी था. मुझमें एक बुरी आदत यह थी कि मैं क़िताबें भूलकर भी कभी स्कूल नहीं ले जाता था. मेरा दोस्त अमर मेरे बगल में ही बैठता था. मैं उससे पुस्तक झपटकर पढ़ने लगता और वह अपनी कॉपी पर झूठ-मूठ की लकीरें खींचने, कुछ अंट-शंट लिखने, किसी को गुदगुदाने या ठोकर मारने की शरारतों में मशगूल हो जाता था. बदले में मैं उसे गणित के सवालों के हल नकल करा दिया करता था. मगर उस दिन जब उसने अपनी क़िताब देने से साफ़ मना कर दिया था, तो मैंने आव देखा न ताव,पलक झपकते ही 'इंग्लिश रीडर' नामक उस किताब के टुकड़े-टुकड़े कर दिये. अंग्रेज़ी सर से शिकायत करने पर मैंने सफ़ाई पेश की थी, 'सर! यह मुझे आपसे पिटवाने की चुनौती दे रहा था. मैंने समझाया कि जब मैं कोई ग़लती करूंगा ही नहीं, फिर सर मुझे पीटेंगे क्यों? इस पर इसने खुद़ अपनी किताब फाड़ डाली और मुझे पिटवाने के लिए शिकायत लेकर आपके यहां आ पहुंचा.'

'अच्छा, तो यह बात है!' कहकर टीचरजी उसे ही अंधाधुंध पीटने लगे था. फिर कक्षा से बाहर निकाल दिया था. अपराध-बोध से ग्रस्त हो, उसके घर जाकर जब मैंने अपनी ग़लती के लिए माफ़ी मांगी, तो उसने कहा था, 'नहीं द्विवेदी! तुम्हारी कोई ग़लती नहीं, यह मेरी शरारत का नतीजा है. तुम्हारी अच्छी छवि के कारण मेरी सच्ची बात झूठी साबित हुई और तुम्हारी मनगढ़ंत बात सच्ची. दिनभर मैं इसी विषय पर सोचता रहा. मुझे तो इस घटना से शिक्षा मिली है. अब मैं भी बुरे कामों में बिलकुल दिलचस्पी नहीं लूंगा.' सचमुच उस दिन के बाद अमर के जीवन की दिशा ही बदल गयी थी. उस वर्ष की भाषण प्रतियोगिता में मुझे प्रथम और अमर को द्वितीय स्थान हासिल हुआ था. आगे चलकर वह सिविल इंज़ीनियर बना था. बाद में जब भी वह मिलता, उस घटना का जिक्र ज़रूर करता था. मैं हर बार उससे यही कहा करता था-

क़दम चूम लेती है खुद़ आके मंजिल
मुसाफ़िर अगर अपनी हिम्मत न हारे.

बात उन दिनों की है, जब मैंने बलिया शहर के राजकीय इंटरमीडिएट कालेज में आई एस-सी में दाख़िला लिया था और शहर में ही रहकर पढ़ाई कर रहा था. वहां के एक बुकस्टाल प्रतिभा प्रकाशन पर नियमित जाया करता था. एक दिन दुकानदार मित्र राजेन्द्र प्रसाद ने एक परचा थमाते हुए सूचना दी थी कि बलिया से प्रकाश्य कथाप्रधान पत्रिका 'सुलभ' के लिए स्तरीय कहानी आमंत्रित की गयी है. मैंने एक कहानी लिखकर पत्रिका के पते पर डाक से भेज दी. एक पखवारा बाद जब मैं गांव गया तो पत्रिका के संपादक और सुपरिचित कथाकार नरेंद्र शास्त्री का पत्र प्राप्त हुआ था, जिसमें उन्होंने कहानी की तारीफ़ करते हुए अगले अंक में प्रकाशन की सूचना दी थी और मिलने की इच्छा भी जाहिर की थी. मेरी प्रसन्नता का पारावार न रहा. वापिस लौटकर मैं टाउन इंटरमीडिएट कालेज में जा पहुंचा था,जहां नरेन्द्र शास्त्री जी अध्यापन किया करते थे. वहां उनके आत्मीय स्नेह व सहृदयता ने मुझे अभिभूत कर दिया था. पत्रिका का नाम

'सुलभ' से 'रससुलभ' हो गया था और अगले अंक में मेरी कहानी 'दस साल इस पार' संपादकीय टिप्पणी के साथ प्रमुखता से प्रकाशित हुई थी। वह बेरोजगारी का दंश झेलनेवाले एक ऐसे युवक की कहानी थी, जो जीवन से निराश-हताश हो पॉर्क में बैठा एक मूंगफली वाले को आवाज़ लगाता है, पर दस साल पहले ऊंचे-ऊंचे हसीन ख़्वाब तथा सतरंगे सपने देखने वाले अपने दोस्त को मूंगफली बेचते देख मर्माहत हो जाता है और ठोंगे की मूंगफली उसे अपने ही मांस के लोथड़े-सी प्रतीत होती है। आगे भी उन्होंने मेरी न सिर्फ़ कहानियां छापीं, बल्कि पत्रिका के बाल साहित्य विशेषांक के अतिथि संपादन का अवसर भी मुझे प्रदान किया. उनके असामयिक निधन के बाद स्मृति अंक के संपादन और संस्मरणात्मक आलेख के जरिए भी श्रद्धा-सुमन अर्पित करने का मौका मिला. इधर शास्त्री जी की बिटिया अर्चना ने उनकी कहानियों का संग्रह 'चक विलियम का डॉक्टर' प्रकाशित करने का बीड़ा उठाया तो एक बार फिर संग्रह की भूमिका लिखकर मैंने स्मृति-तर्पण किया.

डा. केदारनाथ सिंह ने कहा था — भोजपुरी मेरा घर है और हिन्दी मेरा देश. न घर को छोड़ सकता हूं, न ही देश को. अत: जन-जन की राष्ट्रभाषा हिंदी के साथ ही अपनी मातृभाषा भोजपुरी से भी मेरा सहज ही जुड़ाव हो गया था और हिन्दी व भोजपुरी में मैं समान रूप से कहानियां लिखने लगा था. फिर तो दोनों भाषाओं में ही मेरे लेखन-प्रकाशन का सिलसिला परवान चढ़ने लगा था. जिन दिनों बी एस-सी और एम एस-सी का छात्र था, वहां की पत्रिका 'पारमिता' से बतौर छात्र संपादक व लेखक जुड़ने का सुयोग भी प्राप्त हुआ था. तत्कालीन दैनिक पत्रों के साहित्यिक परिशिष्ट के साथ ही 'धर्मयुग','साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'सारिका', 'कादम्बिनी', 'आजकल', 'नवनीत' आदि पत्रिकाओं में भी रचनाएं प्रकाशित-प्रशंसित होने लगी थीं. बलिया में राष्ट्रकवि दिनकर के काव्य-गुरु रामसिंहासन सहाय 'मधुर',परशुराम चतुर्वेदी, डॉ.रामविचार पाण्डेय, दुर्गा प्रसाद गुप्त, काशी प्रसाद उन्मेष, लालजी सहाय लोचन, प्रीतम, अशोक, विनय बिहारी सिंह, शिवकुमार पराग, अशोक द्विवेदी, शैलेन्द्र, शोभनाथ लाल,राजेन्द्र भारती आदि साहित्यकारों की सोहबत में आकर गोष्ठियों-सम्मेलनों में भी सहभागिता के अवसर मिलने लगे थे. एक कवि सम्मेलन में तो मुझे पूरी रात नंगे पांव ठंड में ठिठुरते हुए बितानी पड़ी थी.किसी ने मेरी नयी सैंडिलचुरा ली थी. ठिठुरनभरी सर्द रात मैंने खाली पांव गुजारी थी और अगले दिन ग्यारह बजे दुकान खुलने के बाद ही एक जोड़ी चप्पल खरीद पाया था. काव्यपाठ के मद में अगर छोटी-मोटी रकम नहीं मिल पायी होती तो वह भी क्रय कर पाना संभव न हो पाता.

वे गर्दिश के दिन थे. न चाहते हुए भी महज१८ वर्ष की आयु में ही ६ जून १९७३को मुझे शादी के बंधन में बंधना पड़ा था. पिताजी की दलील थी कि मेरी दादी पोती या पोते का मुंह देखकर ही इहलोक से विदा होना चाहती थीं और इसके लिए मुझे बलि का बकरा बनाया गया था. फलत: बर्नपुर (पश्चिम बंगाल) में पली-बढ़ी हृदया नाम की जीवनसंगिनी मेरे घर-आंगन में फुदकने-चहकने लगी थी और अपनी पढ़ाई पूरी करने तक मैं तीन प्यारी-प्यारी बेटियों का पिता बन चुका था. अर्थाभाव में न तो बाल-बच्चों की देखभाल कर पा रहा था,न पारिवारिक जिम्मेदारियां ही निभा पाने में सक्षम था.

सन १९७५ और १९७६में कुछ दिनों के लिए मैं गांव से चलकर पटना आया था. पहली मर्तबा नौकरी के सिलसिले में परीक्षा देने और दूसरी दफ़ा साक्षात्कार में शरीक होने. आने पर उन पत्रिकाओं के संपादकों से भी मिला था, जिनमें मेरी रचनाएं छपती रही थीं. उनमें पं.रामदयाल पांडेय बच्चों की सर्वाधिक लोकप्रिय पत्रिका 'बालक' का संपादन किया करते थे. कहानी प्रधान पत्रिका 'प्रगतिशील समाज' के संपादक प्रो श्यामनंदन शास्त्री और उस वक़्त की साहित्यिक पत्रिका 'पहुंच' के संपादक आनंद कुमार वर्मा का भी भरपूर स्नेह मिला था. बिहार सेवक प्रेस चलानेवाले! विवेकानंद संदेश' के संपादक सतीशराज पुष्करणा के यहां तो एक बार रात्रि विश्राम भी किया था. अगले वर्ष १९७७ में बिहार का भारत सरकार के दूरसंचार विभाग में मेरी नियुक्ति हो गयी थी. आगे चलकर वह महकमा भारत संचार निगम लिमिटेड के रूप में परिणत हो गया था, जहां से ३०जून, २०१५ को सेवानिवृत्त हो मैं स्वतंत्र लेखन में तल्लीन हो गया.

बिहार सरकार के मंत्रिमंडल सचिवालय (राजभाषा)

विभाग के अंतर्गत हिन्दी प्रगति समिति का सलाहकार सदस्य भी मुझे मनोनीत किया गया था. अखिल भारतीय भोजपुरी साहित्य सम्मेलन के महामंत्री के रूप में मैंने अपनी सेवाएं दी थीं और प्रवर समिति का सदस्य व 'सम्मेलन पत्रिका' का बतौर सलाहकार संपादक भी कार्यरत रहा.

पिछली सदी का आठवां दशक लघु-पत्रिकाओं का स्वर्णकाल था. कथाप्रधान महत्वपूर्ण पत्रिका 'कथाबिंब' का प्रकाशन भी उन्हीं दिनों आरंभ हुआ था और शुरुआती दौर में ही मेरी कहानी प्रकाशित हुई थी. पत्रिका का लघुकथा विशेषांक भी ऐतिहासिक महत्व का साबित हुआ था जिसमें मेरी लघुकथा भी शामिल की गयी थी. लब्धप्रतिष्ठ कथाकार द्वय 'अरविंद'-मंजुश्री की दृष्टि संपन्नता का ही परिणाम है कि नये-पुराने कथाकारों की कहानियों से सुसज्जित हर अंक चर्चा में रहता है और अब तक १५८अंकों का प्रकाशन कर पत्रिका ने इतिहास रचा है. कभी प्रबोध कुमार गोविल भी 'कथाबिंब' के संपादन से संबद्ध रहे थे और 'बंबई रात की बांहों में' से प्रेरणा लेकर जब वे मुंबई से जयपुर पहुंचे तो उन्होंने प्रणयानुभूति का कहानी संकलन 'जयपुर प्रीत की बांहों में' का संपादन किया और उसमें मेरी भी कहानी सस्नेह सम्मिलित की गयी थी.

आठवें-नौवें दशक में बिहार में भी रचनाशीलता के लिए उपयुक्त माहौल था और 'नई धारा','ज्योत्स्ना','मुक्तकंठ', 'कृतसंकल्प बेला','सांस्कृतिकी','प्रगतिशील समाज', 'प्रस्ताव', 'अब' आदि अनेक लघुपत्रिकाएं चर्चा के केंद्र में रही थीं. 'ज्योत्स्ना' में जहां मेरा उपन्यास 'यातना-शिविर' धारावाहिक प्रकाशित हुआ था, वहीं 'प्रगतिशील समाज' के मार्च, १९८१अंक में मेरी ७४ लघुकथाओं पर केंद्रित एक मुकम्मल अंक छपा था. संपादक प्रो श्यामनंदन शास्त्री ने लघुकथाओं की बाबत लिखा था — 'श्री द्विवेदी ने पिछले कुछेक वर्षों में ढेर सारी लघुकथाएं लिखी हैं जिनका सामाजिक आयाम न केवल विस्तृत है, बल्कि जिनमें जीवन की धड़कन भी विद्यमान है. लघुकथाकार की दृष्टि पैनी और दृष्टिफलक बहुआयामी पकड़ वाला है. चतुर्दिक जहां कहीं भी असंगतियां और विद्रूपताएं हैं, वे उसकी पैनी नज़र से बच नहीं पाती हैं और एक अहम सवाल बनकर लघुकथा के रूप में सामने चली आती हैं. इस कथन की सच्चाई का प्रमाण ये लघुकथाएं स्वयं देंगी--'सिर्फ़ इतना ही नहीं, उन्होंने अपने संदीप प्रकाशन से मेरी लघुकथाओं का पहला संग्रह 'भविष्य का वर्तमान' भी उसी वर्ष प्रकाशित किया था. उसके पूर्व मेरा भोजपुरी उपन्यास, जो स्त्री-विमर्श पर केंद्रित था,'दरद के डहर' शीर्षक से छप चुका था. कोलकाता की मासिक पत्रिका 'भोजपुरी माटी' ने फरवरी, १९८२ अंक में मेरा एक और उपन्यास 'बगाव' प्रकाशित किया था. उन्हीं दिनों आरा (भोजपुर) वैएक साहित्यिक मित्र चंद्रिका प्रसाद ने पटना से एक मासिक पत्रिका के प्रकाशन की योजना बनायी थी और संपादन का दायित्व मुझ पर सौंप दिया था. 'सर्वद्रष्टा' नाम की वह पत्रिका तीन बरसों तक ही निकल पायी. 'अभ्यंतर'(लखनऊ) के कहानी विशेषांक, हिंदी के प्रतिनिधि बाल साहित्यकार अंक, 'युवारश्मि' (लखनऊ) के ग्राम्यकथा विशेषांक एवं लघुकथांक के अतिथि संपादन के अवसर भी मिले थे. भोजपुरी गीत संकलन 'धार के खिलाफ','ग़ज़ल संकलन 'समय के राग' और लघुकथा संकलन 'टुकी-टुकी जिनगी' के संपादन के जरिए मैंने लोकभाषा में प्रयोगधर्मिता की मिसाल कायम करने की कोशिश की थी.

खड़ी बोली हिंदी के विकास में भारतेन्दु हरिश्चंद्र की जो भूमिका रही, ठीक वैसी ही भूमिका थी भोजपुरी में भिखारी ठाकुर और महेन्द्र मिसिर की. इसीलिए इन दोनों विभूतियों पर व्यक्तित्व-कृतित्व से जुड़कर मैंने हिंदी में विनिबंध (मोनोग्राफ) लिखे. भिखारी ठाकुर वाली पुस्तक का तो शीर्षक ही था-'भिखारी ठाकुर : भोजपुरी के भारतेन्दु'. लोकधुनपूरबी के पुरोधा महेन्द्र मिसिर केंद्रित मोनोग्राफ को 'भारतीय साहित्य के निर्माता' श्रृंखला के तहत साहित्य अकादेमी, दिल्ली ने प्रकाशित किया था. साथ ही, उनके चुनिंदा १०१गीतों को भी चयनित-संपादित किया था 'महेन्द्र मिसिर के चुनिंदा भोजपुरी गीत' शीर्षक से. वाचिक परंपरा में पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही लोककथाओं की विलुप्तप्राय थाती को मैंने 'भोजपुरी कथाएं', 'भोजपुरी लोककथा मंजूषा' शीर्षक वृहद ग्रंथों में पुनर्लेखन कर संकलित किया था जिनको मध्य प्रदेश संस्कृति परिषद, भोपाल और हिंदुस्तानी एकेडेमी, प्रयागराज ने प्रकाशित किया था.

मैं मूलत: स्वयं को कथाकार मानता हूं, क्योंकि

कहानियां लिखने के बाद मुझे सर्वाधिक आत्मतोष की अनुभूति होती है.

अब तक कहानियों के छह संग्रह,लघुकथाओं के तीन संग्रह एवं पांच उपन्यासों के सृजन के बहाने सामाजिक विसंगतियों-विद्रूपताओं की गहराई में पैठकर ज़रूरी सवाल उठाता आ रहा हूं. कोशिश यही रहती है कि मेरी हर रचना समय से मुठभेड़ करे और मानवीय संवेदना जगाए. गांव और लोक मेरे भीतर आज भी ज़िंदा है तथा मुझे जीवंत बनाए रखता है. अत: आलोचक जब मुझे ग्राम्य संवेदना का कथाकार कहते हैं तो गौरवानुभूति ही होती है. मेरे गीत-नवगीत व समकालीन कविताओं में भी दिल की धड़कनों की तरह ही ग्राम्यानुभूतियां झंकृत होती हैं. मेरे भीतर की आकुलता-व्याकुलता ही मुझे रचने को विवश करती है.

बच्चों के लिए अब तक मैंने एक सौ से अधिक पुस्तकों की सर्जना की है और इनमें कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, जीवनी, निबंध व विज्ञान विषयक किताबें शामिल हैं. इनमें कइयों का भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ है और केंद्र व राज्य की पाठ्यपुस्तकों में इन्हें पढ़ाया जाता है. मेरी कोशिश रहती है कि मेरा बाल-साहित्य बच्चों को आनंदित करे, उनके दिल में धड़कता रहे. इसके लिए मैं बच्चा तो बन जाता हूं, पर अपने बचपन की ओर न लौटकर मौजूदा दौर के बच्चों के मनोविज्ञान, उनकी प्रवृत्ति-प्रकृति व अभिरुचि-आवश्यकता को पकड़ने-परखने का प्रयास कर ऐसा मज़ेदार साहित्य रचता हूं, जो खिलंदड़ेपन के साथ कौतूहल को जगाते हुए जिज्ञासा को शांत करे और खेल-खेल में ही कोई जीवनोपयोगी संदेश दे जाये. मेरा मानना है कि बाल-साहित्य लेखन की कसौटी है और प्रत्येक ज़िम्मेवार रचनाकार को बाल-साहित्य अवश्य रचना चाहिए. प्यारे नन्हें-मुन्नों के अधरों पर निश्चल मुस्कान लाना हम सबका दायित्व है, क्योंकि: 'हंसी दूधिया तीन लोक से न्यारी लगती है/बच्चे हंसते हैं तो दुनिया प्यारी लगती है.'

आज भी मैं खुद़ को एक विद्यार्थी मानता हूं और हर व्यक्ति से कुछ-न-कुछ सीखने की कोशिश करता हूं. मेरे अंतस में मौजूद बच्चा आज भी मुझे जीवंत बनाये रखता है. साहित्य-सर्जना की बदौलत ही मैं अब तक तमाम झंझावातों को झेलता आ रहा हूं, वरना मैं कब का मर गया होता. मुझे भरपूर भरोसा है कि ज़िंदगी की आख़री सांस तक मैं साहित्य को जीता रहूंगा. होश संभालने से लेकर आज तक जीवन-पथ पर जिनका भी प्रत्यक्ष-परोक्ष स्नेह-सहयोग मिला, जिन्होंने तमाम मुश्किलों को आसान किया, जिन्होंने मार्गदर्शन किया उनके प्रति भी और जिन्होंने पथ पर कांटे बिछाये उनके प्रति भी मैं नतमस्तक हो कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं. डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' के शब्दों में-' सांसों पर अवलंबित काया जब चलते-चलते चूर हुई/दो स्नेह-शब्द मिल गये, मिली नवस्फूर्ति, थकावट दूर हुई/पथ के पहचाने छूट गये, पर साथ चल रही याद/जिस-जिससे पथ पर स्नेह मिला, उस-उस राही को धन्यवाद!'

शकुंतला भवन,
सीताशरण लेन, मीठापुर,
पटना-८०००००१(बिहार)
मो. : ९३०४६९३०३१
ईमेल:dubeybhagwati123@gmail.com

पूर्वाग्रह..... का शेष भाग....

''तुम ठीक कहती हो आज तुम्हें देख कर कोई भी नहीं कहेगा कि तुम उस नौकरी के योग्य नहीं थी.''

स्नेहा मुस्कुरा रही थी और राखी ने उसका हाथ अपने हाथों में ले लिया था.

''तुमसे मिलने से पहले मैंने भी तो न जाने कितने पूर्वाग्रह तुम्हारे लिए अपने मन में बना लिये थे.'' स्नेहा के हाथ की कसावट बढ़ गयी थी.

''आप दोनों की बातें तो ख़त्म होने से रहीं लेकिन एयरपोर्ट जाने का समय हो गया है.'' राखी के पति ने कमरे में दाखिल होते हुए कहा.

कुछ समय बाद राखी को सपरिवार एयरपोर्ट छोड़ कर स्नेहा अपने घर लौट रही थी. अपनी सहेली के साथ बिताये मधुर पलों की मुस्कराहट उसकी आंखों में तैर गयी थी. राखी भी फ्लाइट में बैठ कर दुबई यात्रा के पलों को संजो रही थी.

५ सी वुरा विला, पांचवी लेन, इस्कॉन मंदिर के पास, भक्ति वेदांत रोड,
चेन्नई-६००११५.
मो : ९५९७१७२४४४
sgtarochika@gmail.com

आंचलिक कहानी संसार को समृद्ध करती हुई कहानियां

✍ डॉ. बिंदु द्विवेदी

लेखक : अशोक वशिष्ठ
पुस्तक : इस जनम का श्राद्ध
प्रकाशक: इंडिया नेटबुक्स प्राइवेट लिमिटेड
सी-१२२, सेक्टर-११९, नोएडा-२०१३०१.
मूल्य: २५०/-

कहानीकार अशोक वशिष्ठ का ग्रामीण कहानियों का संग्रह 'इस जनम का श्राद्ध!' उनका प्रथम कहानी-संग्रह है.स आपकी कहानियों की कथावस्तु, पात्र, संवाद एक अंचल विशेष से जुड़े हुए हैं. आपने मानव-मन की कमज़ोरियों और आत्म मंथन को बड़ी गहराई में जाकर अपने पात्रों के माध्यम से कुशलतापूर्वक अभिव्यक्ति दी है. ग्राम्य जीवन की विडंबना को आपने बड़ी सूक्ष्मता से कहानियों में प्रस्तुत किया है. कहानीकार ने संग्रह की कहानियों में ग्रामीण परिप्रेक्ष्य को, गांव के बदलते हालातों, दम तोड़ते गांव के आत्मीय रिश्तों को, ग्रामीण एकता के बिखरते एहसासों को बड़ी बारीक़ी से कहानी-दर-कहानी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है.

कहानियों को पढ़ने पर यह एहसास होता है कि लेखक का गांव के प्रति प्रेम वैसा ही है जैसा एक भक्त का ईश्वर के प्रति होता है. अपनी कहानियों के माध्यम से लेखक की कलम ने शिक्षा, रोज़ी-रोटी या अन्य किसी कारण से गांव को पीछे छोड़ शहर में बस जाने वाले और शहरी बन जाने वाले असंख्य लोगों के अपने गांव से गहरे जुड़ाव को मार्मिक अभिव्यक्ति प्रदान की है. लेखक की कहानियों में निहित भाव के माध्यम से यह एहसास निरंतर बना रहता है कि शहर में तमाम सुख-सुविधाओं के बावजूद मिट्टी से जुड़ा इंसान अपनी जड़ों की ओर, गांव की ओर लौटना चाहता है, किंतु जब अपनी ज़िम्मेदारियों को पूरा कर, जीवन में एक मुकाम हासिल करके वह अपने गांव लौटने के बारे में सोचता है, तब वह भूल जाता है कि उसने जो लंबा समय शहर में बिताया है, वह कई दशकों का एक लंबा अंतराल रहा है. समय के इस लंबे अंतराल ने गांव में भी बहुत कुछ बदल दिया है. गांव अब प्रेमचंद के युग का गांव नहीं रहा. किंतु लेखक की ही नहीं, शहर में आकर बसने वाले हर इंसान की विडंबना यह है कि वह चार पांच दशक शहर में बिताने के बाद गांव में अपना बीता हुआ समय खोजता है. गांव के बदलाव को स्वीकार नहीं कर पाता.

संग्रह की कहानियों का सौभाग्य ही है कि वर्तमान दौर की वरिष्ठ और सुप्रसिद्ध कहानीकार डॉ. सूर्यबाला जी ने इस पुस्तक की भूमिका लिखकर कहानियों को अपना आशीर्वाद और लेखक महोदय को शुभकामनाएं देते हुए उनका मार्गदर्शन किया है. सूर्यबाला जी का यह लिखना कि- 'स्वाभाविकता और सहजता इन कहानियों के प्राण तत्व हैं. लोक जीवन में रची-पगी, मुहावरों से सजी भाषा में आंचलिकता की नक्काशी बहुत अच्छी बन पड़ी है. आडंबरहीन शिल्प और भाषा का सहज प्रवाह कहानियों की अतिरिक्त विशेषता है जो कहीं भी सायास बलपूर्वक ठूंसी हुई नहीं प्रतीत होती.' कहानियों के बारे में बहुत कुछ बयां कर देता है.

कहानीकार अशोक वशिष्ठ ने 'अपनी बात' में अपने लेखन की प्रामाणिकता को और क़लम के प्रति समर्पण भाव को बड़ी संजीदगी और सहजता से स्वीकार किया है. ऐसा लगता है यह लेखक की 'अपनी बात' न होकर जीवन के भोगे हुए यथार्थ को कोरे काग़ज़ पर उकेरकर रख देने का भाव रखने वाले हर इंसान की 'अपनी बात' है. लेखक ने पूरी ईमानदारी से गांव के प्रति मोह को स्वीकार करते हुए लिखा है - 'मुंबई जैसे महानगर में पिछले चार दशकों से भी अधिक समय से निवास करते हुए भी ठेठ गांव वाला ही बना हुआ हूं. शहरी नहीं बन पाया. हर बार गांव खींच कर ले जाता है अपने परिवेश में.' — इसे पढ़ते हुए सुप्रसिद्ध रचनाकार धर्मवीर भारती की अमर पहाड़ी कन्या की याद ताज़ा

हो जाती है. जो मैदानों में ब्याह कर आने के बाद अपनी जन्मभूमि में लौटने के लिए तड़पते हुए बार-बार 'जुहो - जुहो' अर्थात 'जाऊं - जाऊं' की पुकार लगाती रहती है.

कहानी संग्रह में कुल ग्यारह कहानियां हैं, जिनमें से एक कहानी 'इस जन्म का श्राद्ध' को लेखक ने कहानी संग्रह के शीर्षक का सम्मान दिया है.. कहानी संग्रह की सभी कहानियों के 'शीर्षक' जैसे एक ही गांव के अलग-अलग पात्र होने का दावा करते हैं. संग्रह की कहानियों के कथानक को लिया जाए, घटनाओं के कालक्रम पर ध्यान दिया जाए अथवा पात्रों पर गंभीर विचार किया जाए तो ये सभी एक अंचल विशेष को प्रतिबिंबित करते हुए दिखाई देते हैं.

संग्रह की पहली कहानी 'कंतो बुआ' को पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि हम एक ऐसे गांव विशेष में पदार्पण कर रहे हैं जहां हमें 'बंसी ताऊ, सूखी तोरई, महमूद मियां, दीनानाथ, पंडित आत्माराम शास्त्री, पंडित जटाशंकर, सिलिया' ये सभी पात्र पड़ोसियों के रूप में सहज ही मिल जायेंगे और जिनके जीवन से जुड़ी हुई अनेक ऐसी बातें होंगी जो उन्हें एक कहानी का पात्र बना देंगी. कहानियों को पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि सभी पात्र हमारे आसपास उपस्थित हैं और हम स्वयं उनके जीवन में होने वाली इन घटनाओं के साक्षी बन रहे हैं. कहानियों को पढ़ते समय होने वाला यह एहसास निश्चित ही लेखक की लेखन शैली की कुशलता का परिचायक है. वैसे तो संग्रह की प्रत्येक कहानी अपने आप में महत्वपूर्ण है, किंतु कुछ कहानियां जैसे 'कंतो बुआ, सूखी तोरई, बंसी ताऊ, संतो की लाड़ो का ब्याह, महमूद की गाय और इस जन्म का श्राद्ध' कथानक, पात्र चयन और शिल्प की दृष्टि से बेजोड़ बन पड़ी हैं.

संग्रह की पहली कहानी 'कंतो बुआ' में लेखक ने गज़ब के मनोवैज्ञानिक ढंग से कंतो बुआ के रूप में क़िस्मत और हालात की मार झेलती स्त्री के जीवन के दर्द को वाणी प्रदान की है. बेटे की चाहत रखने वाली कंतो बुआ की कोख से मरगिल्ला-सा बालक सत्यदेव जन्मा तो जैसे दुःख की गाज आ गिरी हो. लेखक के शब्दों में बालक को राम जी का प्रसाद मानकर उसकी सेवा-टहल होने लगी. कहानी के आरंभ में संजीव बाबू का अपनी बुआ जी से मिलने के लिए जाते समय मिठाई खरीदना यह जानते हुए भी कि खाने वाला कोई नहीं है बुआ जी के सिवाय, हमारे भारतीय समाज के उस सशक्त पक्ष को उजागर करता है जहां दूर होने पर भी रिश्तों की मिठास कि कम न होने का एहसास दिलाते हुए भेंट में मिठाइयों का लेन-देन होता है. बुआ का संजीव बाबू को यह कहना — 'बेटा, काहे को ले आते हो मीठा-सीठी इतना खर्च़ करके? कौन है यहां जो खायेगा मिठाई? भैया होता तो ज़रूर खाता. उसको अच्छी लगती थी मिठाई.' बुआ के मन की तड़प को व्यक्त करता है. बुआ जी का खुश़ होकर मिठाई स्वीकार करना, मिठाई का एक टुकड़ा दालान की छत पर अज्ञात देवताओं के नाम और रसोई घर में सुलगते चूल्हे में अग्नि देवता को भेंट करना, ईश्वर और पंच तत्व के प्रति बुआ की प्रगाढ़ आस्था का परिचय देते हैं. इतना ही नहीं अपने रिश्ते की जिज्जी (जेठानी) को मिठाई देने जाना कहीं ना कहीं इस बात को दर्शाता है कि बुआ जी के मन में जहां अपनी जेठानी के प्रति सम्मान की भावना है वहीं वे अपनी जेठानी को यह भी दर्शाना चाहती हैं कि बहुत कुछ खोने के बाद भी उनके पास कुछ रिश्ते शेष हैं जिनमें मिठास और बुआ जी के प्रति चिंता बची हुई है.

कहानी में किन्नरों की टोली का सत्यदेव को लेने आने वाला दृश्य बड़ा हृदय विदारक है जहां बुआ जी भरे जाड़ों में पसीने से तरबतर हो जाती हैं और उनकी टांगें थरथर कांपने लगती हैं. जब बालक सत्यदेव को अपनी टोली के लिए किसी योग्य ना पाकर किन्नरों की टोली भेंट लेकर वापस लौट जाती है, तब कंतो बुआ का सत्यदेव को जिगर से लगाकर जी भर कर रोना, पाठक को रुला देता है. इस कहानी में एक मां के साथ-साथ स्त्री होने की मनःस्थिति को उजागर करते हुए बेटे सत्यदेव और बहू के बीच के संबंधों के बारे में जानने के लिए उत्सुक कंतो बुआ रोज़ सवेरे नई बहू का चेहरा पढ़ने की कोशिश करती दिखाना और लेखक का यह लिखना कि 'चौकन्नी और चिंतित कंतो बुआ ने शर्म-हया को तिलांजलि देकर एक दो बार सर्द रातों में बंद दरवाज़े की झिरी में से कुछ हलचल, कोई सरसराहट महसूस करने की कोशिश की मगर हर बार निराशा हाथ लगी. बहू ने खाना-पीना लगभग छोड़ दिया'-- इस कहानी को एक अलग श्रेणी पर ले जाता है. कहानी अपने अंत तक आते-आते पाठक को कंतो बुआ के अंतहीन दुःख का भागीदार बना लेती है.

'सूखी तोरई' कहानी में लेखक ने सूखी तोरई के नाम

से प्रसिद्ध रामपरसाद के रूप में ऐसे पात्र को गढ़ा है जो कमोबेश हर गांव में मिल ही जाता है. यह पात्र सबके सुख-दुःख में सबसे पहले पहुंचने वाला, मेहनती, नेता क़िस्म का, बड़बोला, निर्भीक और सत्यवादी है. सूखी तोरई एक जगह कहता है - 'मरने के बाद बामन हो या हरिजन, सब देवता बन जाते हैं तभी तो सब मुर्दे को देखते ही हाथ जोड़ते हैं और सब मुर्दे के पायताने धोक लगाते हैं'- आम इंसानों के जातिगत भेदभाव को मानने के दोष और मृत्यु के बाद के बदले रूप पर प्रश्नचिन्ह खड़ा करते हैं. इस कहानी में ठाकुर महेंद्र पाल द्वारा सूखी तोरई की हत्या की ओर लेखक का किया गया इशारा अमीरी- ग़रीबी के बीच की खाई को और ग्रामीण जीवन में चलने वाले अन्याय, अत्याचार और दीन-हीन के प्रति अमानुषिक व्यवहार को अभिव्यक्ति देता है.

'महमूद की गाय' कहानी भारत के गांव में चली आ रही गंगा-जमुनी तहज़ीब के भरोसे को और अधिक मज़.बूती प्रदान करती है और हिंदू-मुस्लिम सौहार्द को प्रगाढ़ता देते हुए महमूद मियां और उनकी पत्नी के द्वारा गाय के प्रति प्रेम और लगाव को बड़ी ही खूबसूरती से बयान करती है. 'गांव में महमूद मियां खुद को उतना ही महफूज समझते जितनी कि दांतो के बीच जीभ होती है.' 'बड़ा सौहार्दपूर्ण माहौल था. सब आपस में चाचा, ताऊ, बाबा-दादी, अम्मा, भैया, भौजी के रिश्तों में बंधे थे. हिंदू लड़के उर्दू के जानकारों से अलिफ़-बे सीखते. राम-राम का जवाब राम-राम से, बंदगी का जवाब बंदगी से दिया जाता. होली, दिवाली पर हिंदू घरों से पकवान की थाली मुसलमानों के घरों में जाती और ईद के दिन बिना पके चावल, सेवईं और बूरा हिंदुओं के घरों में पहुंचते. मुसलमान दिवाली तो न मनाते मगर होली पर हिंदू-मुसलमान में फर्क़ करना मुश्किल हो जाता' — जैसे वाक्यों के माध्यम से लेखक ने जाति-धर्मगत एकता की बात को बडी सुंदरता से दर्शाया है. किंतु राजनीति के चलते देश में उठे धर्म के नाम पर भेदभाव की आंधी से हालात किस कदर बिगड़े, इसे लेखक की ये पंक्तियां बयां करती हैं — 'अचानक यह कैसी आग लग गयी! कैसा बवंडर आ गया! जिनके बीच ज़िंदगी निकल गयी रहते हुए, अब उनसे संभल कर रहना होगा. सब तो यही कहते हैं.'

संग्रह की एक अन्य कहानी 'संतों की लाडो का ब्याह' मैं लेखक ने कहानी के मुख्य पात्र 'संतो' के जीवन की त्रासदी के माध्यम से समाज में आज भी होने वाले बेटा-बेटी के बीच के अंतर को मुखरित करते हुए बेटे को जन्म न देने पर एक स्त्री को किन-किन लानत-मलामत से गुज़र कर भी सहना पड़ता है, इस बात को संतो की मां के एक कथन के द्वारा व्यक्त किया गया है - 'बिटिया, औरत और धरती एक जैसी. दोनों माता कहलावें. धरती तपती धूप, बरसते ओले, गिरता पारा, आंधी- तूफान, भूचाल, बाढ़, सूखा सब सह लेवे बिना किसी उङ्का के. धरती का सीना चीरे है किसान तो भी धरती मैया अन्न का दाना देवे हैं बदले में. धरती की तरियां धीरज धरियो मेरी लाड़ो.' किंतु आजीवन ससुराल में नारकीय जीवन जीने वाली संतो अपनी दस वर्षीय बेटी के जबरन किये जा रहे विवाह का पुरजोर विरोध करती है. स्वयं तो आजीवन उसने अत्याचार सहा, किंतु अपनी बेटी के साथ वह अत्याचार नहीं होने देती. अपनी बेटी का भविष्य खुद की तरह बनने से रोकने के लिए उसकी आंखों से चिंगारियां निकलने लगती है और विरोध के रूप में वह कहती है- 'खबरदार जो मेरी बेटी को बोझ कहा तो. इसके बाप की तो मैं कहती नहीं, मेरे तो ज़िगर का टुकड़ा है मेरी लाड़ो. अपनी कोख से जन्म दिया है मैंने इसे. और एक बात मेरी भी सुन लो- बेटी कभी भी मां-बाप पर बोझ ना होवे. हां ज़िम्मेदारी जरूर होवे है.. बोझ तो वह बने है ससुराल वालों पर तभी तो उसे जलाकर या विष देकर मार देवे हैं, कभी दहेज के नाम पर तो कभी और किसी बहाने.'

'भगोड़ा' कहानी का मुख्य पात्र दीनानाथ किशोर अवस्था में अपनी मां पर दारूबाज पिता द्वारा किये जा रहे अत्याचारों को देखकर वह दुखी होता रहता है. एक रात नशे में धुत पिता के द्वारा अपनी मां की हत्या कर दिये जाने पर वह किशोर पिता की हत्या करके गांव से किसी शहर की ओर भाग जाता है और वहां पुलिस के हाथ आने से बचता रहता है. किंतु मातृ .भक्त उसी दीनानाथ की नियति उसकी मां से ज़्यादा अलग नहीं थी. उसकी मां ने जहां पिता की हिकारत को सहा था, वहीं दीनानाथ को अपनी बेवफ़ा पत्नी की बेवफ़ाई को सहना पड़ता है.. पिता की हत्या की सज़ा उसे जीवन के अंत में उस समय महसूस होती है जब उसके पढ़े-लिखे बच्चे उसकी पत्नी की मृत्यु के पश्चात उसे एक अपाहिज बूढ़ा और बोझ समझकर वृद्ध आश्रम के हवाले कर देते हैं. 'आज दीनानाथ को लगा कि वह सचमुच का भगोड़ा

कविता

जीवन के धोबी पटरे पर

फूलचंद मानव

जीवन के इस धोबी पटड़े पर
मलते मसलते मासूम कपड़ों की तरह
देह के साथ ही होने दिया खिलवाड़
और निचुड़ते निचोड़ते भीगे कपड़ों के समान
गीलापन बहुत बाकी है.
अभी रिश्तों में भी
पटकना, पछाड़ना, पोंछना, संवारना
या फिर खंगालना
जीवन सिर्फ़ यही तो नहीं
हम और हमारे संस्कार
पीढ़ियों से धोते सुखाते आ रहे हैं
अरमान
अरमान, आसमान की तरह साफ़ हों
तो लुभाते हैं, नहीं तो
बरसाती मौसम में
सूखते कपड़ों की तरह
सैलाब से भर जाते हैं,
ज़िंदगी और जन्म का
यह सिलसिला हिला अधहिला,
मिला मिलाया सामने आता है
मानों ख़्यालों से ही दूर हो जाता है,
मन पछताता है जब जब
अंधेरी कंदराओं की चीख़
नहीं सुन पाता है
ज़िंदगी के ऐसे धोबी पटरे पर....

साहित्य संगम, २३९, दशमेश एक्लेव, ढकौला-हिम्मतगढ़, जीरकपुर, मौहाली-पंजाब-१४०६०३. मो. ०१७६२-२७१५६२

था पिता का हत्यारा. पुलिस की पकड़ से बच कर भागने वाला भगोड़ा.... उसे लग रहा था कि उसके गांव के निकट के थाने से आयी पुलिस जैसे उसे हथकड़ी लगाकर जबरन घसीट कर ले जा रही हो. जैसे उसे उसके किये की सज़ा मिल रही हो.' 'भगोड़ा' कहानी एक ओर इस बात की तरफ़ इशारा करती है कि मनुष्य को अपने कर्मों का फल इसी धरती पर भुगतना पड़ता है. एक इंसान ग़लती करके दुनिया की नज़रों से भले बच जाता है, किंतु अपनी नज़रों से बच नहीं पाता. वहीं दूसरी ओर यह कहानी नशे के आगोश में खोते जा रहे गांवों का आईना बन गयी है जिसमें गांव की युवा पीढ़ी तेजी से डूबती चली जा रही है. 'मर्द ज्यादातर निकम्मे थे उसके गांव के. भट्टी की बनी कच्ची दारू पी कर टुन्न रहा करते थे सारे मर्द. बच्चे जवान होने से पहले ही दारू का नशा करने लगते थे.' ये पंक्तियां मूल्य हीन होते ग्रामीण जीवन की सच्चाई बयां करती हैं.

संग्रह की कहानी 'इस जनम का श्राद्ध' यूं तो बाहरी तौर पर परंपरा से चले आ रहे सामाजिक कर्मकांड में बदलाव के संकेत को व्यक्त करती हुई दिखाई देती है, किंतु मूल रूप में 'भगोड़ा' और 'तुलसी का चौरा' इन कहानियों में छिपे बुज़ुर्गों के बच्चों द्वारा होने वाले तिरस्कार और बुढ़ापे की बदहाली को ही अभिव्यक्ति देने वाली मार्मिक कहानी है. जहां 'तुलसी का चौरा' कहानी में रामप्रताप की पत्नी 'फूलपुर वाली' के देहांत के बाद रामप्रताप बेटे-बहुओं पर बोझ बन जाते हैं और उनका मासूम-सा पोता उनसे कहता है — 'मैं नहीं कहता दद्दू. घर में सभी तो कहते हैं. मम्मी कहती है — बुड्ढा जाने कब मरेगा, ताई कहती है — राम जी उठाते काहे नहीं है बूढ़े को. दादू, ऐसा करो तुम राम जी के पास चले ही जाओ. वहीं रहना.' कहानी 'इस जन्म का श्राद्ध!' कहानी में अपने जीवन के अंतिम समय में बेटे-बहुओं से मिलने वाले निरादर और उपेक्षा से त्रस्त पंडित जटाशंकर अंत में अपने बच्चों से मिली उपेक्षा के प्रति वितृष्णा से भर कर अपनी वसीयत बनाते हैं और वसीयत में लिखवाते हैं — 'हे! मेरे परमपिता परमेश्वर, तुझ से हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूं कि मेरी मृत्यु के बाद मुझे फिर से

मानव योनि में जन्म मत देना. यदि मानव योनि में जन्म हो तो मुझे पुरुष मत बनाना. अगर पुरुष बनूं भी तो मैं कुंवारा रहूं और यदि विवाह हो तो मेरी कोई औलाद न हो. यदि औलाद हो भी तो वह बेटी हो बेटा नहीं. अब मैं यह कहता हूं कि मेरे मरने पर मुझे मेरे किसी खेत पर फूंक दिया जाये मगर मेरी मिट्टी को मेरे दोनों बेटों में से कोई हाथ न लगाये. अपने बेटों से मैं यह अधिकार छीनता हूं. मेरे मरने के बाद का कोई संस्कार न किया जाये.' रूढ़ि और परंपरा का त्याग करके इतनी सख्त वसीयत लिखवाने वाले पंडित जटाशंकर अपनी मृत्यु के उपरांत का श्राद्ध अपने जीते जी खुद के ही खर्चे से करवाते हैं और श्राद्ध कर्म पूरा हो जाने के पश्चात अंतिम सांस लेते हैं. बदलते समय में संबंधों की बदलती परिभाषाओं के संदर्भ में यह कहानी बुढ़ापे में बच्चों से हुए मोहभंग को दर्शाते हुए पंडित जटाशंकर के माध्यम से अपने अंतिम संस्कार भी स्वयं ही कर लेने चाहिए-की नयी इबादत गढ़ती है.

अशोक वशिष्ठ की कहानियों में विश्व विख्यात लेखक मुंशी प्रेमचंद जी और उनकी परंपरा के कहानी लेखकों की तरह आदर्श का निर्वहन दिखता है. इस संग्रह की कई कहानियों के मुख्य पात्रों में कई महिलाएं हैं, जो केवल ग्रामीण ही नहीं बल्कि भारतीय संघर्षशील नारी के विविध रूपों के हमें दर्शन करवाती हैं, जिनके प्रति लेखक का भाव बहुत ही सहानुभूति पूर्ण बन पड़ा है. इस संग्रह की कुछ कहानियां पाठक को आज से क़रीब चालीस वर्ष पूर्व के समय और समाज में ले जाती हैं. कहानियों में समय का एक ठहराव दिखाई देता है.

कहानियों में पात्र चयन लेखक ने बड़ी सूझबूझ के साथ किया है और प्रत्येक पात्र के चित्रण में न्याय भी किया है. कंतो बुआ हो, महमूद हो, बंसी ताऊ हो, संतो हो, या पंडित जटाशंकर- ये सभी पात्र पाठक के मानस पटल पर एक गहरी छाप छोड़ते हैं, जैसे ये किसी कहानी के पात्र न होकर उनके अपने रिश्तेदार या बहुत क़रीबी हों.

पात्रों के चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इस कहानी-संग्रह को सफल कहा जा सकता है. कहानियों में संवाद को आवश्यकता के अनुसार योग्य रूप में स्थान दिया है, जो कहानी की मांग के अनुकूल है. संवादों में रवानगी है और वे कहानी को मज़बूती प्रदान करते हैं. संग्रह की कई कहानियों में लेखक ने गांव, समाज और देश की गंभीर समस्याओं पर क़लम चलायी है और इस संदर्भ में पाठकों को चिंतन के लिए नयी दिशा प्रदान की है.

संग्रह की अधिकतर कहानियों को सहज विस्तार मिलता गया है. कहीं भी अनावश्यक तौर पर किसी भी कहानी या पात्र को विस्तार देने का मोह लेखक में दिखायी नहीं दिया है. संग्रह की कहानी 'यादों के झरोखे' में लेखक का गांव और अपनी जड़ों से गहरा प्रेम सहज ही प्रस्फुटित हुआ है तो 'वसूली' कहानी के माध्यम से रिश्तो में कहीं हम ठगे न जाएं-- इसकी सतर्कता भी दिखायी देती है.

कहानियों का कथानक सधा हुआ-सा है. कहानी की भाषा-शैली सहज और सरल है. आवश्यकतानुसार लेखक ने यथा स्थान ग्रामीण भाषा का प्रयोग भी किया है. कुछ स्थानों पर भाषा को और अधिक परिमार्जित रूप में भी गढा जा सकता था, ऐसी गुंजाइश नज़र आती है.

संग्रह की कहानियां आदर्शवादी, यथार्थवादी और मनोवैज्ञानिक भावों की त्रिवेणी नज़र आती हैं.

संग्रह की कई कहानियां न जाने कितनी ही सामाजिक विसंगतियों से पर्दा उठाती हुई दिखाई देती हैं, तो अनेक स्थानों पर आदर्श का आग्रह करती भी नज़र आती हैं.

कहानियों में पात्रों के बीच के मर्मस्पर्शी रिश्तों को लेखक ने बड़ी संजीदगी से प्रस्तुत किया है. एक इंसान जीवन की कितनी विसंगतियों का लेखा-जोखा होता है, इसे कहानी के पात्रों के माध्यम से लेखक ने पाठक के सामने रखने का बड़ा ही सफल प्रयास किया है.

अंततः यह कहा जा सकता है कि जब भी आंचलिक कहानियां और गांव देहात को केंद्र में रखकर लिखी गयी उच्च स्तरीय कहानियों का उल्लेख होगा तब अशोक वशिष्ठ जी की ग्राम्य अनुभवों और जीवन मूल्यों से ओतप्रोत इन कहानियों की चर्चा अवश्य होगी और इन कहानियों के द्वारा आंचलिक कहानियों के नये मानदंड स्थापित होंगे.

डॉ. बिंदु द्विवेदी
डी/२, ३०३, संघवी वैली,
पारसिक नगर, कलवा (पश्चिम),
ठाणे- ४००६०५ (महाराष्ट्र).
मो. ९८२०५५४०४

लघुकथा

उसका संघर्ष

सविता दास

संघर्षपूर्ण जीवन के साथ तालमेल बनाकर चलना सच में हर इंसान के लिए एक चुनौती ही होती हैं. प्रभा से अधिक इन बातों को और कोई क्या समझता होगा, हर रोज विद्यालय के लिए तैयार होने से पहले घर का सारा काम निपटा कर, बच्चों को स्कूल भेजकर थक-सी जाती थी फिर भी स्कूल जाने के लिए समय पर तैयार हो जाती क्योंकि कर्म-स्थल आपके जीवन का संघर्ष नहीं जानता चाहता. वह सिर्फ आपसे समर्पणयुक्त कर्तव्य चाहता है. यही सोच और एक गहरी सांस लेकर प्रभा विद्यालय की ओर प्रतिदिन चल पड़ती है.

आज छठी कक्षा के छात्र-छात्राओं का टेस्ट था. गांव का सरकारी विद्यालय यहां छात्रों से बहुत ज़्यादा उम्मीद करना भी सही नहीं था, फिर भी प्रभा एक-एक कर सभी को कॉपी निरीक्षण कर रही थी. तभी एक मैली सी कॉपी प्रभा के हाथ लगी. प्रभा ने जोर से पुकारा — यह कॉपी किसकी है?

सहमी सी एक छात्रा सम्मुख आकर खड़ी होती है, बाल-बिखरे, मटमैला-युनिफार्म पहने हुए उसकी दशा देख प्रभा ने सवाल किया — यह क्या हालत है बना रक्खी है तुमने? इतना गंदा होकर भला कोई विद्यालय आता है क्या?

प्रभा के सवाल करने पर भी वह यूं ही चुपचाप खड़ी रही. तो उसे गुस्सा आ गया, डांटते हुए बोली — बोलती क्यों नहीं, गूंगी हो गयी है क्या?

छात्रा धीरे से बोली की जो दीदी, वो घर पर....

छात्रा अपनी बात पूरी भी न कर सकी की प्रभा ने फिर डांटा —अपने माता-पिता से बोलना की कल विद्यालय आकर वे मुझसे मिले यह कहकर प्रभा उसकी कॉपी फिर से देखने लगी.

छात्रा ने सहमी-सी आवाज में कहा दीदी, दरअसल मुझे घर पर अपनी चाची की देखभाल करनी होती है.

- ऐसा क्यों? तुम्हारे माता-पिता तुम पर इतनी 'जिम्मेदारी' क्यों देते हैं.

- मां और पिताजी हैदराबाद में रहते हैं, वही काम करते हैं. साल में सिर्फ़ एक ही बार आते हैं.

- तो फिर तुम किनके साथ रहती हो — प्रभा ने फिर पूछा.

जी, मैं अपनी दादी और चाचा-चाची के साथ रहती हूं.

ऐसा क्या हुआ जो चाची की देखभाल करनी पड़े? प्रभा की उस्तुकता बढ़ती जा रही थी.

छात्रा ने कहा, मेरी चाची एक महीने पहले चूल्हे के पास काम करते हुए जल गयी थी, दिन में दो बार उनके जले हुए शरीर को साफ़ करना पड़ता है. एक नर्स आती है तो मुझे उनका हाथ बंटाना पड़ता है. उनका शरीर लगभग आधा जला हुआ है. मैं खुद़ अपने हाथों से उनके घावों को साफ़ करती हूं. सुबह चार बजे उठकर पढ़ाई करती हूं, फिर दादी के साथ खाना बनाती हूं और फिर चाची की ड्रेसिंग. इसी जल्दबाजी में कभी बिना कुछ खाए स्कूल आ जाती हूं.

– ओह ! प्रभा की सांस मानो थम-सी जाती है. मात्र ग्यारह की होगी वह छात्रा जिसका नाम रिचा था. इतने कम उम्र में उसे इतनी बड़ी जिम्मेदारी. आर्थिक अभाव की वजह से माता-पिता के वात्सल्य से भी दूर थी और उस पर ये सब.

प्रभा पूछती है, तुम्हे डर नहीं लगता जले हुए घावों को छूते हुए ?

- नहीं दीदी, मुझे आदत हो गयी है, हल्के से मुस्कुराकर रिचा कहती है. प्रभा उठ खड़ी होती है, इस नन्ही-सी बच्ची के सामने मानो उसका संघर्ष काफी छोटा हो जाता है. रिचा की पीठ थपथपा कर प्रभा कक्षा से निकल जाती है .

लाचित चौक, सेन्ट्रल जेल के निकट, डाक : तेज़पुर, शोणितपुर, असम ७८४००१. मो. :९४३५६३१९३८

''साहित्य पर समाज का गहरा प्रभाव है''

पिछले दिनों मुंबई प्रवास के दौरान प्रख्यात साहित्यकार एवं साहित्यिक पत्रिका कथाबिंब के प्रधान संपादक डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद' एवं देश की सुप्रसिद्ध कथाकार-सम्पादिका मंजुश्री से मुलाकात महत्वपूर्ण रही. हिंदी साहित्य-संसार के दोनों सशक्त हस्ताक्षरों से साहित्य, कला और संस्कृति से लेकर बदलते समाज और देश काल पर खुलकर बातें हुई. साहित्यिक शिष्टाचार से लबरेज सक्सेना दंपती ने अपनी तरुणाई में ही हिंदी-सेवा के लिए जा कलम उठाई तो इस वार्धक्य में भी बेथके पूरे उत्साह और लगन के साथ लिखे जा रहे हैं. कहें कि विभिन्न विधाओं में आज भी उनकी कलम बोल रही है. एक ओर जहाँ डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद' देश काल और समकालीन परिस्थितियों पर साहित्य की विभिन्न विधाओं का प्रयोग किये जा रहे हैं वहीं उनकी विदुषी धर्मपत्नी मंजुश्री साहित्यिक पत्रिका के संपादन के साथ ही कहानी-उपन्यास के क्षेत्र में लगातार अपनी उपस्थिति दर्ज कर रही हैं. हिंदी पट्टी के लिए सुखद है कि भारतीय भाषाओं के अनुप्रयोग में सक्सेना दंपती ने देश-दुनिया में हिंदी के लालित्य को बेहतरीन अंदाज में पेश किया है. डॉ.माधव सक्सेना 'अरविंद' ने यूँ तो कहानियों में एक-से-एक रचनाएं कीं लेकिन अपनी साहित्यिक यात्रा की शुरुआत के बारे में बताते हुए मुस्कुरा उठते हैं कि पहले दौर में कविता ने उनका मार्ग प्रशस्त किया. कविता से शुरू हुई उनकी यात्रा फिर विभिन्न विधाओं में भांति- भांति के अनुप्रयोग करने लगी. फिर तो साहित्य-सरिता में उनने ऐसा अवगाहन किया कि आज पैंतालीस वर्षों से वे कथाबिंब पत्रिका का अनवरत प्रकाशन कर रहे हैं और ज्वलंत मुद्दों पर लिख रहे हैं. हिंदी की वर्तमान दशा पर वे कहते हैं कि हिंदी का प्रश्न राजनीतिक हो गया है. वे पूछते हैं, आखिर १४ सितंबर कब तक चलाएंगे? हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रयोग को आवश्यक बताते हुए उनने कहा कि यही समय की मांग है. उनने कहा कि तमाम अवरोधों के बाद भी आज विश्व में हिंदी बोलने वालों के संख्या बढ़ रही है. भोपाल के एक सम्मान कार्यक्रम का उल्लेख करते हुए डॉ सक्सेना ने बताया कि वे सुनकर आश्चर्यचकित रह गए कि पुरस्कृत चाइनीज लेखन ने हिंदी में बड़ी सुंदर प्रस्तुति दी. केबीसी में अमिताभ बच्चन की हिंदी का भी उन्होंने उल्लेख किया. हिंदी के बढ़ते कारवां का जिक्र करते हुए कहा कि अब तो एमबीबीएस के पढ़ाई भी हिंदी में शुरू हो रही है. हिंदी की प्रगति में विज्ञान का उल्लेख करते हुए उनने कहा कि इस दिशा में कम्प्यूटराइजेशन से भी बहुत मदद मिली. ईमेल का प्रयोग हर भाषा में किया जा सकता है. पहले विज्ञान की शब्दावली नहीं थी इसके लिए उन्हें शब्दावली आयोग में सदस्य चुना गया. हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद के माध्यम से भी भाषा के क्षेत्र में बहुत काम हुए. डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद' ने अनुवाद के क्षेत्र में भी बहुत काम किया. बूढ़ी काकी की तर्ज पर लिखी उनकी कहानी खास सुर्खियों में रही. विख्यात साहित्यकार कमलेश्वर के चर्चित उपन्यास कितने पाकिस्तान पर चर्चा के बीच मंजुश्री ने जोड़ा कि समकालीन कहानियों ने अच्छा सफर तय किया है. माधव सक्सेना 'अरविंद' की कहानी हिंदुस्तान/पाकिस्तान की भी खासी चर्चा रही.

साहित्य में खेमेबाजी को अनुचित बताते हुए दोनों ही साहित्यकारों ने एक साथ कहा कि इस प्रवृत्ति ने साधारण लेखकों को नुकसान पहुंचाया.

मंजुश्री कहानी के क्षेत्र में ऐसा विशिष्ट नाम है जिसने अपनी अलग पहचान बनाई है. खासकर कथ्य और नवीन प्रयोगों के लिए जाने जाने वाली मंजुश्री ने बदलते दौर की बारीक पहचान की और उसे कथा सूत्र में पिरोकर प्रस्तुत किया. शिक्षाविद लेखिका मंजुश्री संपादिका के रूप में कथाबिंब को आकार देने में दिलोजान से लगी रहती हैं. स्त्री विमर्श और कि महिलाएं लिख रही हैं और खूब लिख रही हैं. अकहानी हो या सकहानी सभी साहित्य में उनकी बराबर की दखल है. यही समय का बदलाव है. समाज जैसा है उसका प्रभाव पड़ता है. उस तरीके का लेखन ज्यादा मिलता है. पितृसत्तात्मक समाज में भी लिखने के लिए समय निकालना आसान नहीं है. नौकरी का दबाव परिवार का ढांचा और बराबरी का दर्जा कुछ ऐसा है कि चुनौतियां पेश आती हैं. ओपन लिख पाना संभव नहीं है. फिर भी वे मुखरित हो कर सामाजिक तानेबाने को मजबूत करती हैं. स्त्रियां हर क्षेत्र में दमखम के साथ बढ़ रही हैं यह बड़ी बात है. मंजुश्री के कहानी संग्रह जागती आँखों का सपना, शह और मात, कुछ मेरी अपनी कहानियां और अतीत के अंधेरे में चर्चा में हैं तो उनके प्रकाशनाधीन उपन्यास निचले पायदान पर खड़ा आदमी का पाठकों को बेसब्री से इंतजार है.

(तरुण छत्तीसगढ़ से साभार.)

लेखक : शिवनाथ शुक्ल
मो.: ७८०४९९१६९२

"कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार-२०२२"

अभिमत-पत्र

वर्ष २०२२ के संयुक्तांकों में प्रकाशित कहानियों के शीर्षक, रचनाकारों के नाम के साथ नीचे दिये गये हैं. वर्ष २०२२ के दोनों संयुक्तांक **"कथाबिंब"** की वेबसाइट www.kathabimb.com पर उपलब्ध हैं. पाठक अपनी पसंद का क्रम (१,२,...७, ८) सामने के खाने में लिखकर हमें भेजें. आप चाहें तो इस अभिमत-पत्र का प्रयोग करें अथवा मात्र आठ कहानियों का क्रम अलग से एक पोस्टकार्ड पर लिख कर भेज सकते हैं या ई-मेल द्वारा भेजें. प्राप्त अभिमतों के आधार पर इस वर्ष भी *सर्वश्रेष्ठ कहानी* (१५०० रु. - एक), *श्रेष्ठ कहानी* (१००० रु. - दो) तथा *उत्तम कहानी* (७५० रु. के पांच) पुरस्कार घोषित किये जायेंगे. वर्तमान में निर्णय लिया गया है कि किन्हीं कारणों से **"कथाबिंब"** का प्रकाशन फिलहाल स्थगित रहेगा. संभव है कि कुछ समय बाद स्थितियां ऐसी बनें जब **"कथाबिंब"** का प्रकाशन पुन: आरंभ हो. अप्रैल अंत तक पुरस्कारों की घोषणा रचनाकार **"कथाबिंब"** की वेबसाइट पर देख पायेंगे!

कहानी शीर्षक / रचनाकार	**आपका क्रम**
१. नहीं मुझे शहर नहीं जाना है - सीमा असीम सक्सेना	
२. निर्णय - डॉ. सी. भास्कर राव	
३. उसका आना - प्रगति गुप्ता	
४. अंतिम इच्छा - डॉ. रंजना जायसवाल	
५. चल मेरे चेतक - सदाशिव कौतुक	
६. तितलियां और तितलियां - अखिलेश श्रीवास्तव चमन	
७. हरा समंदर - प्रेम गुप्ता "मानी"	
८. मैं बांझ नहीं हूं- रश्मि धवन	
९. मन की ज़मीन - विजय सिंह चौहान	
१०.मैं आगे बढ़ गयी हूं - डॉ. जयवंती डिमरी	
११.परदा रीलोडेड - डॉ. निधि अग्रवाल	
१२.गांधी का स्वप्न भंग - संजय कुमार सिंह	
१३.कभी देर नहीं होती... - डॉ. सुधा ओम ढींगरा	
१४.मूक-क्रंदन - डॉ. वीणा विज "उदित"	
१५.उस सुबह की चाय - आशागंगा प्रमोद शिरढोणकर	
१६.ना-मुराद - ज्योति जैन	
१७.पेंडुलम- सुधा जुगरान	
१८.एक नया संबंध - रजनीश राय	
१९.ख़ुशियों की चाबी - अल्का अग्रवाल	
२०.कोलतार की तपती सड़क पर - अनीता रश्मि	
२१.हरे कांच की चूड़ियां- डॉ. पूरन सिंह	
२२.नींव - यशोधरा भटनागर	
२३.दरारें- जयंत	
२४.पूर्वाग्रह - रोचिका अरुण शर्मा	

आपके अपने पुस्तकालय के लिए ज़रूरी पुस्तकें

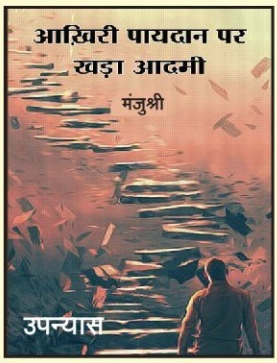

मूल्य :
२५० रु.

शिवना प्रकाशन,
पी. सी. लैब, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट,
बस स्टैंड, सीहोर-४६६००१. (म. प्र.)
e-mail: shivna.prakashan@gmail.com

मूल्य :
३९५ रु.

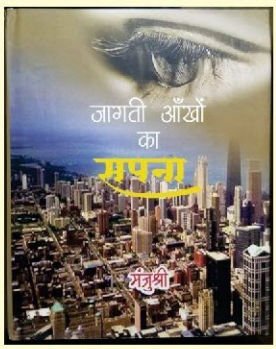

नीरज बुक सेंटर, आर्यनगर सोसायटी, प्लॉट-९१,
आई.पी.एक्सटेंशन, दिल्ली-११००९२
e-mail: bhavna_pub@rediffmail.com

प्रकाशक से सीधे मंगाने पर २० प्रतिशत छूट का लाभ उठायें.

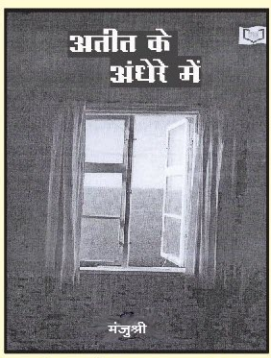

मूल्य :
२०० रु.

इंडिया नेटबुक्स प्रा. लि.,
सी-१२२, सेक्टर १९, नोएडा-२०१३०१.
e-mail: indianetbooks@gmail.com

मूल्य :
४०० रु.

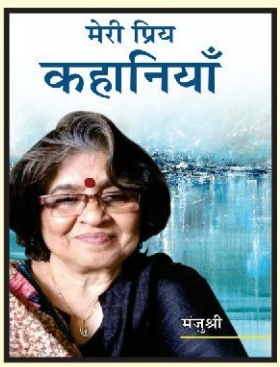

श्रीसाहित्य प्रकाशन, डी-५८०, गली नं. ४,
अशोक नगर, शाहदरा,दिल्ली-११००९३.
e-mail: shrisahityaprakashan@gmail.com

amazon
Flipkart
पर भी
उपलब्ध

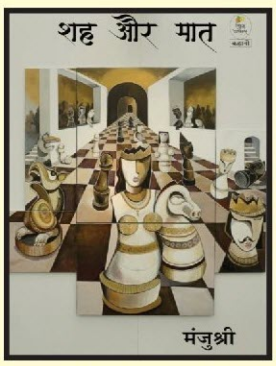

मूल्य :
२०० रु.

शिवना प्रकाशन,
पी. सी. लैब, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट,
बस स्टैंड, सीहोर-४६६००१. (म. प्र.)
e-mail: shivna.prakashan@gmail.com

पत्रिका का पता : ए-१०, बसेरा, ऑफ घिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई-४०० ०८८

T.A. Corporation

Mulchand Zaverchand Coop. Soc., Shop No. 3, Gr. Floor,
Sion-Trombay Road, Chembur, Mumbai-400071.
Mob : 9869074305

Offers

- ☐ H.P.L.C. GRADE CHEMICALS
- ☐ SCINTILLATION GRADE CHEMICALS
- ☐ GR GRADE CHEMICALS
- ☐ BIOCHEMICALS
- ☐ STANDARD SOLUTIONS
- ☐ HIGH PURITY CHEMICALS
- ☐ ELECTRONIC GRADE CHEMICALS
- ☐ LR GRADE CHEMICALS
- ☐ INDICATORS
- ☐ LABORATORY INSTRUMENTS

Manufactured by :

PRABHAT CHEMICALS

C1B, 1909, G.I.D.C., Panoli, Dist. Bharuch, Gujarat,
Ph.: 02646-272332
email : response@prabhatchemicals.com
website : www.prabhatchemicals.com

Stockist of :

- Sigma, aldrich, Fluka, Alfa, (U.S.A.)
- Riedel (Switzerland)
- Merch (GDR)
- Lancaster (UK)
- Stream (UK)

मंजुश्री द्वारा संपादित व पिकॉक प्रिंट्स, सी/143, घाटकोपर इंड. एस्टेट, अमृत नगर, घाटकोपर, मुंबई-400086 में मुद्रित.
टाईप सेटर्स : वन अप प्रिंटर्स, 12वां रास्ता, द्वारका कुंज, चेंबूर, मुंबई-400 071.